श्री जिन तारणतरण

वृहद् तीन बत्तीसी

[श्री ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी कृत टीका सहित]

—प्रकाशक—

श्री तारण तरण चैत्यालय ट्रस्ट कमेटी

सागर (म० प्र०)

द्वितीयावृत्ति प्रतियां ३०००

वीर नि० सं० २५१७ विक्रम सं० २०४७

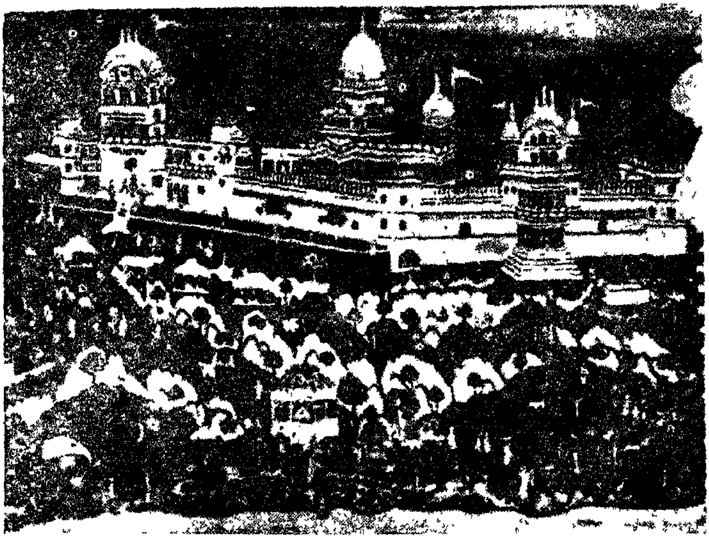
मूल्य १५ रुपये

मुद्रक-

जन जन पुकार प्रेस

वरियाघाट सागर (म० प्र०)

श्री १००८ तीर्थक्षेत्र निसईजी–मल्हारगढ़



संपूर्ण दृश्य– (बाहरी)

प्रकाशकीय-

सोलहवीं शताब्दी के महान् आध्यात्मिक संत श्री तारण तरण स्वामी द्वारा रचित आध्यात्मिक ग्रंथ रचनाओं में से अधिकांश ग्रंथों की बोधगम्य भाषा शैली में टीकाओं को करने का श्रेय श्रद्धेय स्व० ब्र० शीतल प्रसाद जी को है, उनके अनवरत प्रयासों के फलस्वरूप जैन जगत में इन ग्रंथों का महत्व निरंतर बढ़ रहा है यह प्रसन्नता की बात है।

"वृहत् तीन बत्तीसी संग्रह" में श्री पंडित पूजा, श्री कमल बत्तीसी एवं श्री माला रोहण नामक (तीन रत्नत्रय रूपी) ग्रंथों का समावेश मूल गाथाओं के अर्थ, भावार्थ, अन्वयार्थ सहित है, जो धर्म जिज्ञासुओं एवं स्वाध्याय प्रेमियों के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो रहा है और इस ग्रंथ की उपयोगिता भी निरंतर बढ़ती जा रही है।

इस लघु एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ को अभाव की दृष्टि में द्वितीय संस्करण के रूप में प्रकाशित कराया जा रहा है और यह दायित्व श्री तारण तरण जैन चैत्यालय ट्रस्ट कमेटी सागर ने लिया है।

इस ग्रंथ की उपयोगिता बढ़ाने एवं श्री जिन तारण स्वामी के जीवन- दर्शन को प्रतिपादित कराने वाले आमुख

के लेखक श्रीमान् डॉ० कपूरचंद जी आयुर्वेदाचार्य सागर एवं संत श्री के बहुमुखी व्यक्तित्व को व्यक्त करने वाले विस्तृत और शोधपूर्ण जीवन परिचय के लेखक सिद्धांताचार्य श्रीमान् पंडित फूलचंद्र जी सिद्धांत शास्त्री बाराणसी के हम हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने हमारे अनुरोध को स्वीकार कर आवश्यक सामग्री प्रदान कर प्रथम संस्करण को प्रकाशित कराने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

धर्म दिवाकर श्रद्धेय ब्र० गुलाबचंद जी महाराज एवं त्यागमूर्ति बाल ब्रह्मचारिणी पू० विमलादेवी जैन दर्शनाचार्य ने जो मंगलमयी आर्शीवाद प्रदान किया तथा श्रद्धेय समाज रत्न पू० ब्र० जयसागर जी महाराज एवं श्रीमान् कपूरचंद जी समैया (भायजी सा०) के अपेक्षित साहित्यिक सहयोग एवं निष्ठा के लिये ट्रस्ट कमेटी इन सभी की आभारी रहेगी।

इस ग्रंथ के प्रथम संस्करण का प्रकाशन श्रद्धेय बंधु द्वय (पूज्य दाजी एवं पूज्य कक्का जी) श्रीमंत समाज भूषण सेठ भगवानदास शोभालाल जी ने श्रीमान् मगनलाल जी जैन के अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) में कराया था, उनके अकथनीय प्रयासों और धार्मिक श्रद्धा भावनाओं को हम किन शब्दों में व्यक्त करें हम तो केवल उन बंधु द्वय भव्य आत्माओं के आर्शीवाद के ही सदैव अभिलाषी रहे हैं, जिन्होंने सदैव हमारा मार्ग प्रशस्त किया और समाज का नेतृत्व किया है। वे हमारा श्रद्धायुक्त नमन् स्वीकारें।

इस द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के समय प्रूफ रीडिंग आदि के कार्य में धर्मोत्साही बंधुवर श्री कुसुमकांत जी ने जो श्रमपूर्ण सहयोग प्रदान किया तथा पं० भोलानाथ जी पुरोहित जन-जन पुकार प्रेस सागर ने जो इस ग्रंथ को व्यवस्थित आकार प्रकार देने में अपनी सूझ-बूझ का परिचय दिया है, उसके लिये हम इन दोनों महानुभावों को भी धन्यवाद देते हैं।

●

भविष्य में भी जिन ग्रंथों के प्रकाशन की उपादेयता समझी जावेगी, उनको भी प्रकाशित कराने के लिये ट्रस्ट कमेटी भरसक प्रयास करती रहेगी और एक महत्वपूर्ण कार्य संपादन हेतु दृढ़ संकल्पित रहेगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

धर्मानुरागी गुरु भक्त :-

हुकमचंद जैन-

दिनांक-] (अध्यक्ष, श्री ता० त० जैन चैत्यालय
२४।११।१९९०,] ट्रस्ट कमेटी, सागर- म.प्र.)
५४२ वीं तारण तरण जयंती [४७०-००२]

विषय—सूची

शुद्धि—पत्र

प्र. सं.	लाइन	अशुद्धि	शुद्धि
१४	१४	करण	कारण
२८	११	परिणम	परिणाम
३८	अंतिम	विनासीने	निवासीने
४०	३	रूपमें संलग्न	रूपमें संकलन
५३	१	अरहंतके शुद्ध	अरहंतके स्वरूपको शुद्ध
६७	७	रूप्रपित	प्ररूपित
७५	१६	स्ववरूप	स्वरूप
१०७	२	रसन	रसना
११६	४	सामान	समान
१५१	१८	चैतन्यमल क्षणको	चैतन्य लक्षणको
१६६	१२	बाहर	बारह
१६७	६	भाषा	भाषा
१७७	१३	क्षाभित	क्षोभित
१६६	१७	मरझाया	मुरझाया
२००	१४	स्वाभाव	स्वभाव
२०७	११	दाषं	दोषं
२३०	१४	श ोभनीक	शोभनीक

मेला महोत्सव

तीनों क्षेत्रों पर—

१. बिहार स्थल–	अगहन सुदी ७ तारण तरण जयंती स्थान– सूखा निश्रेयीजी ।
२. साधना स्थल–	माघ सुदी ५ बसंत पंचमी स्थान– सेमरखेड़ी जी ।
३. समाधि स्थल–	फाग सुदी ५ फाग के अवसर पर, फाग फूलना स्थान-मल्हारगढ़ निश्रेयीजी ।

प्रकाशकीय

सोलहवीं शताब्दीके महान आध्यात्मिक संत श्री तारण तरण स्वामी द्वारा रचित साहित्यको उजागर हुए अब काफी समय हो गया है। अधिकांश ग्रंथोंकी भाषा-टीकाका महान कार्य श्रद्धेय स्वर्गीय ब्र. शीतलप्रसादजीके अनवरत प्रयासका सुपरिणाम है। जबसे मूल श्लोकों, गाथाओं तथा सूत्रोंका हिंदी भावार्थ प्रकाशमें आया है तबसे तारण-साहित्यकी उपयोगिता अधिकाधिक बढ़ी है। यही कारण है कि हमें पुनः प्रस्तुत प्रकाशनका सुअवसर प्राप्त हो रहा है। प्रस्तुत जिल्दमें 'श्री पंडित पूजा,' 'श्री कमल बत्तीसी,' एवं 'श्री मालारोहण' को प्रकाशित कर हमें प्रसन्नताका अनुभव हो रहा है। ये तीनों लघु ग्रन्थ रत्नत्रयकी आधारभूत भूमिका तैयार करनेमें महत्त्वपूर्ण योग देनेमें समर्थ हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ स्वाध्याय-प्रेमियोंके लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा-ऐसी हमारी भावना है।

इस ग्रन्थकी उपयोगिता बढ़ाने एवं श्री जिन तारणतरण स्वामीके जीवन-दर्शनको प्रतिपादित करानेवाले आमुखके लेखक श्री डॉ. कपूरचन्दजी आयुर्वेदाचार्य सागर, एवं सन्तश्रीके बहुमुखी व्यक्तित्वको व्यक्त करनेवाले विस्तृत और शोधपूर्ण जीवन परिचय के लेखक सिद्धान्ताचार्य श्री पंडित फूलचन्दजी वाराणसी के हम हृदयसे कृतज्ञ और अनुगृहीत हैं जिन्होंने हमारे अनुरोधको स्वीकार

कर हमें उक्त सामग्री प्रेषित की। पूज्य श्री त्यागमूर्ति विमलादेवीजी, पूज्य श्री ब्र. गुलाबचंद जी के मंगल आशीर्वाद एवं श्री पंडित जयकुमारजी तथा श्री कपूरचन्दजी समैया के सहयोग के लिए अत्यंत आभारी हैं।

अब अंत में श्रीमंत सेठ भगवानदासजी शोभालालजी सागर वालों का जिन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ को छपाने में अथक परिश्रम किया एवं ग्रन्थ के मुद्रक श्री मगनलाल जी जैन, अजित मुद्रणालय सोनगढ़ को भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने बहुत ही परिश्रम पूर्वक प्रथम संस्करण को प्रकाशित करके हमें पूर्ण सहयोग दिया था। अब इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण आपके हाथ में है।

विनीत—

श्री जैन तारण-तरण चैत्यालय ट्रस्ट कमेटी,

सागर (म. प्र.)

—: आ मु ख :—

आजसे चार वर्ष पूर्व मध्यप्रदेश के प्रसिद्धतम समाज सेवी, उदार दानी, समाजभूषण, वयोवृद्ध, श्रद्धेय श्रीमन्त सेठ भगवानदासजी जैन की सर्वतोमुखी समाज-सेवाओं को दृष्टिगत करते हुए सागर जैन समाज ने उनका सार्वजनिक सन्मान करने एवं इसी प्रसंग पर उन्हें एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का निर्णय लिया था। प्रस्तावित अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादक मण्डल में श्रद्धेय पं. फूलचंदजी सिद्धान्तशास्त्री वाराणसी, श्रीमान पं. जगन्मोहन लालजी शास्त्री कटनी, श्री डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर, श्री डॉ. राजकुमारजी साहित्याचार्य आगरा, श्री सागरचन्दजी दिवाकर सागर, श्रीमान पं. जयकुमार जी शास्त्री सिंगोड़ी (छिन्दवाड़ा) के अतिरिक्त मेरा भी एक नाम था। ग्रन्थ का प्रारूप तैयार हुआ जिसे सात भागों में विभक्त किया गया। पहला भाग श्रीमन्त सेठ भगवानदासजी जैन की जीवनी उनके व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व से सम्बन्धित रखा जाना तय हुआ और दूसरे भाग में सन्त श्री तारण स्वामी, उनका सम्पूर्ण परिचय और उनके द्वारा रचित ग्रन्थों का तुलनात्मक विश्लेषण दिये जाने का सर्वसम्मत निश्चय किया गया। आगे के भाग भी विविध विषयों को प्रकाश में लाने के ध्येय से प्रारूप में जोड़े गये। श्री तारण स्वामी से सम्बन्धित अध्याय की तैयारी का दायित्व श्री पं. फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री ने सहर्ष स्वीकार किया और उन्होंने बहुत ही लगन तथा मनोयोग पूर्वक इस अध्याय की सामग्री को संग्रहित करना तत्काल आरम्भ भी कर दिया। चूँकि सम्पादक मण्डल का सदस्य

होने के नाते मुझे भी अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पूर्ण कलेवर से सुपरिचित होना चाहिए था अतः मेरी रूचि तारण स्वामी और उनके द्वारा विहित कार्यों को जानने की ओर उग्र हो गई। मैं स्वीकार करता हूं कि जैन परम्परा के परम पोषक एवं विचारक होने पर भी श्री तारण स्वामी एवं उनके साहित्य से मैं अपरिचित ही था। इसका कारण स्पष्ट ही यह रहा कि दि. जैन साहित्य चाहे वह दर्शन विषयक हो, चाहे न्याय विषयक, या इतिहास विषयक, पाठ्यक्रम में श्री तारण स्वामी का कहीं भी किसी भी रूप में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। मैं ही क्या जैन समाज के ऐसे ही विद्यार्थी और विद्वान श्री तारण स्वामी से आज अपरिचित बने हुए हैं। श्री भगवानदास अभिनन्दन ग्रन्थ के सुयोग से श्री तारण स्वामी को जानने का सुअवसर मेरे लिए सौभाग्य की ही बात थी। मुझे इस दिशा में सम्पूर्ण जानकारी कराने के लिये मेरे अभिन्न मित्र श्री राजकुमारजी सराफ (सुपुत्र– स्व. श्री सेठ भागचन्द्र जी सराफ) सागर ने अत्यधिक सहयोग दिया साथ ही श्री तारण स्वामी रचित प्रायः सब ही ग्रन्थ अध्ययन हेतु भेंट किये। राजकुमारजी प्रकृति से धार्मिक, शुभाशयी, परदुःख कातर एवं सात्त्विक कार्यों में समर्पित भाव से लग जाने वाले युवक हैं। उनके द्वारा प्रदत्त सहयोग के प्रति मैं कृतज्ञ हूं। यद्यपि अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किये जाने की सम्पूर्ण योजना को श्रीमंत सेठ भगवानदासजी जैन की उत्कृष्ट हार्दिक अनिच्छा के कारण सागर जैन समाज को निरस्त कर देनी पड़ी किंतु इस बहाने सन्त श्री तारण स्वामी को समीप से जानने का प्रसंग जिस तरह

मेरे लिये सुखद सिद्ध हुआ उसी तरह सिद्धान्ताचार्य श्री पं.-फूलचन्दजी द्वारा इस सम्बन्ध में जो भी प्रामाणिक जानकारी प्रकाश में आयी है वह भी जैन समाज के लिये उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सिद्ध होगी ।

शताब्दी कोई भी हो और परिस्थिति भी कोई ही क्यों न हो व्यक्ति के व्यक्तित्व को निर्मित होने के लिये कोई न कोई पूर्वापर भूमिका अपेक्षित होती है । सोलहवीं शताब्दी का समय यवन शासन की उथल-पुथल से परिपूर्ण रहा । जैन संस्कृति और उसके आराधना के अवशेषों की सुरक्षा चिन्तनीय बन जाना स्वाभाविक थी । जैनों का प्रचुर-पुरातत्व यत्र-तत्र बिखरा पड़ा था, बिखरा पड़ा है । पुष्पावती के समीपवर्ती सुरम्य क्षेत्रों में भी यवन-शासकों का विशेष प्रभाव अथवा आतंक था । जैन समाज को अपने धर्मायतनोंकी रक्षा की विशेष चिन्ता थी । प्रयास भी किया गया कि मूर्तियों और शास्त्र भण्डारों को सुरक्षित गर्भगृहों में रख दिया जाय और मात्र धर्म प्रचार और ज्ञान की पृष्ठभूमि को परिपुष्ट किया जाय । आवश्यकता तो अविष्कार की जननी होती है । शायद इसीलिये इसी समय एक ओजस्वी और तेजस्वी युवक प्रखर प्रतिभा लिये, उद्दाम-काम को वश में किये सामने आया । जिसके समाजोपयोगी और सामायिक कार्यों तथा अन्तरमुखी सद्वृत्तियों को देखकर तत्कालीन जैन-समाज ने इसका नाम श्री जिन तारण तरण प्रचलित कर दिया और जिसे इस युवक ने भी स्वीकार

कर लिया । यही कारण है कि सन्त श्री तारण स्वामी ने अपने रचना-ग्रन्थों में अपनी ही लेखनी से अपने नाम का उल्लेख किया है यथा :-

जिन उवएसं सारं, किंचित् उवएस कहिय सद्भावं ।
तं जिन तारन रइयं, कम्मक्षय मुक्ति कारनं सुद्धं ।।

—ज्ञानसमुच्चयसार गाथा ६०६

उल्लेखनीय है कि तारन तरन के पहले जो श्री जिन जुड़ा हुआ है वह 'जयतीति जिनः अर्थात् जिनेन्द्र भगवान का प्रतीक नहीं है क्योंकि जैन परम्परा में चार घातिया कर्मों के क्षय कर लेने के बाद जिन संज्ञा प्राप्त होती है । अतः इस संबंध में किसी को भी भ्रमित होने की जरूरत नहीं है । श्री जिन तारण तरण, नाम निक्षेप का विषय है स्थापना का नहीं ।

अद्भुत व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति के जीवन में असाधारण घटनाओं का होना साधारण बात है । लेकिन विशेष व्यक्ति के जीवन की सब से बड़ी बात यह होती है, कि वह बड़ी से बड़ी जोखिम उठाने की तैयारी रखता है । हिंसक मार्ग के अगुवा के अभिन्न होना जिस तरह स्वाभाविक है उसी तरह अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले महात्माओं को भी कम खतरे नहीं झेलने पड़ते । ईसा मसीह को यरूशलम के पुजारी, बुद्ध को देवदत्त, महर्षि दयानन्द को जगन्नाथ, सुकरात को, मीरा को, हमारे आचार्यकल्प पं. टोडरमल को और गांधी को गोडसे की शक्ल में क्या नहीं सहन करना पड़ा । इस कमल-कीच के

संबंध को कायर और कमजोर देखते ही रह जाते हैं जबकि आत्मजयी पुरुष इन सब उपसर्गों और उपद्रवों की परवाह किये बिना अपने जीवन के ध्येय के प्रति समर्पित हो जाते हैं। श्री जिन तारन तरन अपने समय में जो कुछ भी जैनत्व की रक्षा के लिये कर सके वह वन्दनीय और अभिनन्दनीय कहा जा सकता है ।

संक्षेप में उनके ६७ वर्षीय जीवन को ५ भागों में विभाजित किया जा सकता है। १-बाल जीवन २-शास्त्राभ्यास जीवन ३-तत्त्व चिन्तन मनन जीवन ४-ब्रह्मचर्य सहित निरतिचार व्रती जीवन ५-मुनि जीवन। श्री तारन स्वामी का परिचय देने वाले ग्रन्थों से स्पष्ट जाना जाता है कि उन्होंने ६० वर्ष की आयु में मुनि पद प्राप्त कर लिया और ६७ वर्ष तक दिगम्बर साधना में रहकर अपने आप को निखारने में लगे रहे। उन्होंने जो साहित्य-रचना की वह भी पांच भागों में विभक्त होती है। १-आचार मत २-विचार मत ३-सार मत ४-ममल मत ५-केवल मत । आचार मत में श्रावकाचार, विचारमत में तीनों बत्तीसी, सारमत में त्रिभंगी सार, ज्ञान समुच्चय सार और उपदेश शुद्ध सार, ममल मत में-ममल पाहुड़ एवं चौबीसठाणा। केवलमत में -छद्मस्थवाणी, नाम माला, खातिका विशेष, सिद्ध स्वभाव, एवं शून्य स्वभाव। सन्त श्री के विषय में ठिकानेसार नामक उत्तरवर्तिग्रंथ ही कतिपय परिचयात्मक अंश प्रदान करता है। छद्मस्थ वाणी के अध्ययन से मेरा स्पष्ट मत बनता है कि यह सन्त श्री की रचना नहीं है। यह संभव नहीं है कि कोई भी लेखक अपनी रचना में अपने मरण की तिथि का भी उल्लेख कर सके। छद्‌मस्थ वाणी के अंतिम अध्याय में श्री तारन स्वामी के नाम का इस प्रकार उल्लेख हुआ है :-

'जिन तारण तरण शरीर छूटो'

सन्त श्री का संपूर्ण साहित्य ७ हजार श्लोक प्रमाण है। ६ ग्रन्थ पद्यबद्ध हैं, शेष ग्रन्थ गद्यमय एवं सूत्रमय हैं। पूरी रचनायें जिनेन्द्र परम्परा से सम्बद्ध हैं। प्रत्येक रचना के आद्य श्लोकों द्वारा श्री जिनेन्द्र भगवान का स्मरण और स्तवन किया गया है। श्री तारन स्वामीने यत्र तत्र सर्वत्र अपनी रचनाओंमें श्रीजिनेन्द्र भगवानने जो कुछ कहा है उसे मैं कहता हूँ ऐसी विनय प्रगट की है।

श्री तारण स्वामी विचारोंसे उदार और व्यवहारमें अनुशासन प्रिय प्रतीत होते हैं। उपदेश शुद्ध सार की गाथा क्रमांक १५२ में अपने अभिप्राय को इस प्रकार व्यक्त करते हैं :-

"जाइ कुलं नहु पिच्छदि शुद्ध सम्मत दर्शनं पिच्छई"

दिगम्बर जैन परम्परा के महान और समर्थ आचार्य समन्तभद्र के इस श्लोक से उक्त गाथा का कितना साम्य है?

"सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजं।
देवा देवं विदुर्भस्म गूढांगान्तरौजसम॥"

(-रत्नकरण्ड श्रावकाचार २८)

सन्तश्री का संपूर्ण साहित्य भगवान महावीर की परम्परा से जुड़ता है।

श्री तारण स्वामी आचार्य कुन्दकुन्द स्वामीसे अधिक प्रभावित

प्रतीत होते हैं, यही कारण है कि उनकी रचनाओं में अध्यात्म की धारा परिलक्षित होती है। ज्ञानसमुच्चयसार और 'समयसार' की कतिपय गाथाओंमें अत्यधिक साम्य दिखाई देता है। वर्तमान युग के आध्यात्मिक विचारक सत्पुरुष श्रद्धेय श्री कानजी स्वामीने तारण साहित्यका अवलोकन किया है। श्री स्वामीजीने श्री तारण स्वामी द्वारा रचित ग्रन्थों पर बहुत ही रसविभोर होकर २५ के लगभग प्रवचन दिये हैं। बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि इन बहुमूल्य प्रवचनों का 'अष्ट प्रवचन' के नाम से दो भागों में श्री भगवानदास शोभालाल चेरिटेबिल ट्रस्ट, सागर की ओर से प्रकाशन हो चुका है। तीसरा भाग कुछ ही दिनों में प्रकाशित होने जा रहा है। जिनके माध्यम से संत श्री तारण स्वामी की आध्यात्मिक गहराइयों का परिचय प्राप्त होता है।

हमारे ही युग के समाज सुधारक, विचारक एवं निस्पृही ब्रह्मचारी स्व० श्री शीतलप्रसादजी का स्मरण करना इस अवसर पर प्रासंगिक है। ५०० वर्ष तक संपूर्ण तारण साहित्यको अपरिचय की स्थिति से उभारने में स्व० ब्र० शीतलप्रसादजीने जो कार्य किया है वह अभिनन्दनीय है। अधिकांश ग्रन्थों की हिन्दी टीकायें लिखकर ब्र० शीतलप्रसादजीने तारणसाहित्य को समझने के, परिचय में आने के द्वार खोल दिये हैं। उनका उपकार अविस्मरणीय है। सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचंदजी भी श्री जिन तारण स्वामी के संबंधमें जितना भी संभव होगा तथ्य जुटानेमें संलग्न हैं, हम आशा करते हैं कि श्रद्धेय पंडितजी इस संबंधमें जो कुछ

भी लिखेंगे उससे जैन समाज और जैन साहित्यको नई दिशा प्राप्त होगी ।

सन्तश्रीके विचार मत की तीनों बत्तीसियों को एक जिल्दमें प्रकाशित किये जाने का विचार उपयोगी है। प्रकाशित जिल्दमें कुल ६६ गाथायें होंगी जो सभी कण्ठस्थ करने योग्य हैं। प्रस्तुत प्रकाशन समाज द्वारा समादरणीय एवं संग्रहणीय बनेगा इस मंगल कामना के साथ—

१२, लाजपतपुरा
सागर (म० प्र०)
२ अगस्त, १९७७

डा० कपूरचन्द आयुर्वेदाचार्य

ज्ञान का सुप्रभात

पांच शताब्दियाँ बीतीं। गुरुतारण स्वामीजीके भक्त सोते रहे और सोते सोते बहुत बड़े बड़े स्वप्न देखते रहे। आखिरएक संत फिर आया, अलख जगाई। भक्तोंकी निद्रा भंग हुई। ज्ञानका सुप्रभात हुआ। हमने अपने आपको उजेलेमें देखा और देखा कि अपने गुरु तारणके १४ ग्रन्थोंमेंसे ६ ग्रन्थ अन्धकारकी कोठरीसे प्रकाशमें आये। पूरे भारत वर्षमें ६ ग्रन्थोंकी धूम मच गई, एक एक मंदिरमें ग्रन्थ पहुंचाये गये, स्वाध्याय हुआ। हमारे मनमें बड़ा गौरव हुआ। अपने आपको हमने कृतार्थ माना।

धन्य है उस सन्तको! यदि जैनधर्मभूषण धर्मदिवाकर स्व० ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजीकी कृपा न होती तो आज हम कहाँ होते? उनने ममल पाहुड़, ज्ञानसमुच्चय सार, उपदेशशुद्ध सार आदि जैसे बड़े बड़े ग्रन्थोंकी अथक परिश्रम करके भाषा टीका की। उनकी ही यह शक्ति थी कि जिन ग्रन्थोंमें लोगोंकी दृष्टिमें कुछ नहीं था, उन ग्रन्थोंमें ही ज्ञानका वैभव बता दिया। जितनी भी कृतज्ञता प्रगट की जाय थोड़ी है। हम तो स्वर्गीय आत्माके प्रति आज अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित करके अपने आपको भाग्यशाली मानते हैं।

तीन बत्तीसी—श्री पंडित पूजा, श्री मालारोहण, श्री कमलबत्तीसी उपर्युक्त १४ ग्रन्थोंमें ही ३ छोटे छोटे ग्रन्थ हैं, जो बड़े ही महत्वपूर्ण हैं, जिनकी टीका भी उपर्युक्त श्री धर्मदिवाकर सन्त के द्वारा हुई है।

श्री पंडित पूजा ग्रन्थ समस्त शिष्योंके अनुग्रहार्थ बनाया गया है। श्री मालारोहण ग्रन्थ खिमलासामें सेठ श्री पदमसी, अल्पावती सेठानीके पुत्र मानसी और कर्णरंजके ब्याह के समय निर्तरंजकी प्रार्थना और आग्रहसे बनाया।

तीसरी बत्तीसी श्री कमलबत्तीसीको श्री कमलश्री आर्जिका के निमित्त बनाया।

इन तीनों बत्तीसियोंकाविषय अलग-अलग है फिर भी तीनों ग्रन्थ शुद्धात्माके शुद्धोपयोगको ही स्पष्ट करने वाले हैं।

श्री पंडित पूजामें सम्यग्दृष्टि निश्चयनयसे पूजा कैसी करता है ? बड़ा ही रोचक वर्णन है।

श्री मालारोहणमें आत्माके गुणोंकी फूलमाल बनाकर जिसके गुण, उसको ही पहनाई है।

श्री कमलबत्तीसी में जैनदर्शन, सिद्धांत, योग तथा आचार-विचार की ओर संकेत है। तीनों बत्तीसीमें दंसण मूलो धम्मोका प्रबल समर्थन है। बिना सम्यक्त्व के सब व्यर्थ है।

विशेष परिचय तो ग्रन्थोंका स्वाध्याय करने वाले ही पायेंगे। अपनी आत्मासे जो परिचित हैं उन्हें यह तीनों ग्रन्थ रुचिकर होंगे। इन शुभ कामनाओं के साथ ग्रन्थकर्ताके प्रति मेरा श्रद्धा और विनयका भाव है। शेष शुभ।

दिनांक : ५/६/७७
सिंगोड़ी (छिंदवाड़ा)

विनीत—
जयकुमार

श्री जिन तारणतरणस्वामीका परिचय

[श्री पं. फूलचन्द जी जैन सिद्धान्त-शास्त्री द्वारा लिखित ज्ञानसमुच्चयसारकी भूमिकासे]

श्री जिन तारणतरणके बनाये हुए १४ ग्रन्थ माने जाते हैं, यह उनमेंसे एक है। इस ग्रन्थ के अन्तमें वे स्वयं लिखते हैं-

(अ) जिन उवएसं सारं, किंचित् उवएस कहिय सद्भावं।
तं जिन तारन रइयं, कम्मक्षय मुक्तिकारनं सुद्धं ॥९०६॥

श्री जिनेन्द्रदेवका जो साररूप उपदेश है उसके कुछ अंशको लेकर 'जिन तारन' नाम से प्रसिद्ध मैंने इस ग्रन्थ की रचना की है। भगवानका यह उपदेश कर्मक्षयके साथ मोक्षप्राप्तिका निमित्त है और पूर्वापर समस्त दोषोंसे रहित है ॥ ९०६ ॥

(आ) आगे इसी ग्रन्थकी पुष्पिकामें पूरा नाम जिन तारनतरन दिया है। यथा-इति ज्ञानसमुच्चय सार ग्रन्थ जिन तारण तरग विरचित समुत्पन्निता।

(इ) प्रत्येक ग्रन्थकी अंतिम पुष्पिका के समान छद्मस्थवाणीके अंतिम अध्यायमें भी स्वामीजीके पूरे नामका इसप्रकार उल्लेख दृष्टिगोचर होता है।

'जिन तारण-तरण शरीर छूटो'

इन सबको देखनेसे विदित होता है कि प्रकृत ग्रन्थके रचयिताका पूरा नाम 'जिन तारण' न होकर 'जिन तारण-तरण' ही प्रचलित था। उनका 'जिन तारण' यह संक्षिप्त नाम है।

ठिकानेसार ग्रन्थके देखनेसे विदित होता है कि आमजनता इनको 'स्वामीजी' इस नामसे विशेष रुपसे सम्बोधित करती रही है।

मालूम पड़ता है कि उनका 'जिन तारण तरण' नाम जन्म-नाम न होकर ग्रन्थ-रचनाकालमें या ग्रन्थरचनाके पूर्व ही ध्यान-अध्ययनसे ओतप्रोत उनकी अध्यात्मवृत्ति अवस्थाको देखकर साधारण जनताके द्वारा रखा गया होना चाहिये।

यह भी सम्भव है कि अपनी रचनाओं में स्वामीजीने जिन-देव और जिन गुरूके लिये 'तारण-तरण' पदका बहुलतासे प्रयोग किया है, इसलिये अपना गुरु मानकर उन्हें भी जनता द्वारा 'जिन तारण-तरण' नामसे सम्बोधित किया जाने लगा हो।

जो कुछ भी हो इतना स्पष्ट है कि अपनी विपुल रचनाके पूर्व ही वे 'जिन तारण तरण' इस नामसे जाने माने लगे होंगे। यही करण है कि अपनी कई रचनाओंके अन्तमें उन्होंने 'जिन तारण बिरइयं' तथा मुक्ति श्री फूलनामें 'मन हरिषय हो जिन तारण' इस रुपमें अपने नामका स्वयं उल्लेख किया है।

जन्मतिथि निर्णय-

हमारे सामने तीन ठिकानेसार उपलब्ध हैं। उन सबमें भगवान् महावीरके कालसे लेकर इसप्रकार विवरण मिलता है:-

'वीरनाथकी आयु वर्ष बहत्तर, काय हाथ सात एवं काल चौथो। पंचमो कालकी आर्वलि इकीसहजारवर्ष। कालि कौ नाम

टुपमा। मनुष्यकी काया हाथ साढ़े तीन। मनुष्यकी आर्बलि वर्षकी बीसा सौ, तामें घटि बढ़। उन्नीस सौ पचहत्तरि वर्ष गये ते 'तार काल' हु है।

(१) श्री तारण तरण अध्यात्मवाणी पृ० ६७, १०२, १०७ आदि।
वही पृष्ठ ६६।

जहाँ तक मेरा अनुमान है कि ठिकानेसारके उक्त उल्लेखमें 'तार काल' पदसे उसके रचयिताको 'जिन तारण तरण काल' ही इष्ट है। वह मानते हैं कि वीर निर्वाणसे १९७५ वर्ष गत होने पर स्वामीजीका जन्म हुआ। जैसा कि पट्टावलियोंसे ज्ञात होता है कि वीर जिनके निर्वाणलाभके बाद ४७० वर्ष गत होने पर विक्रम सम्वत् प्रारम्भ हुआ। अतः १९७५ वर्षमें से ४७० वर्ष कम कर देने पर वि० सं. १५०५ में स्वामीजीका जन्म हुआ यह निश्चित होता है। १९७५–४७० = १५०५ वि० सं० को जन्म।

अब इस सम्वत्के किस माहकी किस तिथिका स्वामीजीका जन्म हुआ, यह देखना है। छद्मस्थवाणीमें स्वामीजीके शरीर-त्यागके विषयमें यह उल्लेख आता है—

"संवत पन्द्रह सौ बहत्तर वर्ष जेठ वदी छठकी रात्रि सातए शनिवार दिन जिन तारण तरण शरीर छूटो।"

इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि स्वामीजीने जेठ वदी ७ शनिवार वि० सं० १५७२ को इहलीला समाप्त की।

अब यह देखना कि इस तिथि तक स्वामीजीका कितना काल वर्तमान पर्यायमें व्यतीत हुआ। इसके लिये इसी छद्मस्थवाणीके

प्रथम अध्याय पर[1] दृष्टिपात करनेसे विदित होताहै कि स्वामीजी कुल ६६ वर्ष पांच माह पन्द्रह दिन तक वर्तमान पर्यायमें रहे। इसलिये इस कालको शरीर-त्यागके कालमेंसे घटा देने पर जन्म-काल अगहन सुदी ७ गुरूवार वि० सं० १५०५ आ जाता है। क्योंकि अगहन सुदी ७ से जेठ वदी ७ तक गणना करने पर कुल ५ माह १५ दिन होते हैं। तथा उक्त जन्मतिथिसे शरीरत्यागकी तिथि तक वर्षोंकी गणना करने पर ६६ वर्ष होते हैं।

यद्यपि अगहन सुदी ७ से जेठ वदी ७ तक कुल ५ माह १६ दिन होते हैं। परन्तु स्वामीजीने जेठ वदी ६ की रात्रिमें ही शरीर त्याग कर दिया था, इसलिये छद्मस्थवाणीमें जो ५ माह १५ दिनका उल्लेख है वह ठीक है।

छद्मस्थवाणीका एक अन्य उल्लेख–

छद्मस्थवाणीमें एक यह उल्लेख दृष्टिगोचर होता है—

सिद्ध धुव उन्नीस सौ तेंतीस वर्ष दिन रयनसे तीन उत्पन्न।

इसमें प्रथम अंश 'सिद्ध धुव' है, द्वितीय अंश 'उन्नीस सौ तेंतीस वर्ष दिन रयनसे' है और तीसरा अंश 'तीन उत्पन्न' है।

स्वामीजीका जन्म वीर नि० सम्वत्से १९७५ वर्ष गत होने पर हुआ था, हम पहले ही बतला आये हैं। प्रकृत वचनमें उन्नीस सौ तैंतीस वर्षका उल्लेख है। इसलिये प्रश्न होता है कि

१—श्री ता० त० अध्यात्मवाणी पृ० ४०६

किस सम्वत्से १६३३ वर्ष बाद ? विक्रम सम्वत्से तो हो नहीं सकता, क्योंकि विक्रम सम्वत्से १६३३ के कई शताब्दी पूर्व ही स्वामीजीका जन्म हो चुका था । अतः परिशेष न्यायसे इस कालकी गणना वीर निर्वाण संवतसे ही की जानी चाहिये । उक्त उल्लेखमें प्रथम अंश ' सिद्ध ध्रुव ' पद है । मालूम पड़ता है कि छद्मस्थवाणीमें ' सिद्ध ध्रुव ' पद द्वारा वीर जिनका निर्वाण ही अपेक्षित है । अतः पूरे उल्लेखका यह अर्थ हुआ कि वीर निर्वाण सम्वत् से १६३३ वर्ष गत होने पर उत्पन्न हुए । १६७५ मेंसे १६३३ कम करने पर ४२ लब्ध जाते हैं । अतः इस उल्लेखमें जिन तीनके उत्पन्न होनेका निर्देश किया है वे तीन स्वामीजीके जन्मसे ४२ वर्ष पूर्व उत्पन्न हुए, यह निश्चित होता है । पर वे तीन कौन ? यह प्रश्न फिर भी शेष रहता है ।

यदि स्वामीजीके जन्मके समय माता-पिताकी आयु लगभग ४२ वर्ष की थी, यह अर्थ लिया जाता है तो यह प्रश्न होता है कि वह तीसरा कौन व्यक्ति होगा जिसका स्वामीजीके जन्मसे ४२ वर्ष पूर्व जन्म हुआ होगा (मामा) तीसरे व्यक्तिके रूपमें स्वयं स्वामीजीको तो गिना नहीं जा सकता, क्योंकि स्वामीजीका जन्म तो वीर नि० संवत १६३३ से ४२ वर्ष बाद हुआ था । अतः मालूम पड़ता है कि छद्मस्थवाणीके उक्त उल्लेखमें किन्हीं महत्वपूर्ण अन्य तीनका उल्लेख किया गया होना चाहिये । इस विषयमें अनुसंधान होना चाहिये । इससे अनेक ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ना सम्भव है ।

स्वामीजीका जन्म अगहन सुदी ७ गुरुवार वि० सं० १५८५ को हुआ था। इसका निर्णय छद्मस्थवाणीसे हो जाने पर भी उससे उनके माता–पिताका नाम क्या था? जाति, कुल, गांव क्या था? किस नगरीमें उन्होंने जन्म लिया था? इत्यादि बातों पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। एक आध्यात्मिक पुरुष अपने वर्तमान जीवन की लौकिक घटनाओं आदि पर लिखता बैठे यह सम्भव भी नहीं है। अतः इन बातोंके निर्णयके लिए 'निर्वाण हुण्डी' रचना ही एक मात्र सहारा है। इसकी भाषा मिली-जुली है। उसमें स्वामीजीकी माताका नाम 'वीर श्री' और पिताका नाम 'गढ़ा साह' बतलाया है। उसमें यह भी बतलाया है कि वे जातिसे गाहामूरी वासल्ल गोत्र परवार (पौरपट्ट) थे। जन्म-नगरीका उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे पुष्पावती नगरीमें जन्मे थे। इस विषयमें स्व० ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीको छोड़कर अन्य सभीका मत है कि कटनीके पास 'बिलहरी' ग्राम ही पुष्पावती है। पूर्व कालमें पुरातत्वकी दृष्टिसे यह ऐतिहासिक स्थान रहा है इसलिए पुष्पावतीका नाम बदल कर उत्तर कालमें बिलहरी हो गया है, यह बहुत कुछ सम्भव है।

निर्वाण हुण्डीसे इन बातोंके सिवाय उनके शेष जीवन पर उल्लेखनीय प्रकाश नहीं पड़ता। हाँ, छद्मस्थवाणी (प्रथम अध्याय) में कुछ वचन ऐसे अवश्य ही लिपिबद्ध हुए हैं जिनसे उनके जीवनकी खास खास घटनाओं पर प्रकाश पड़ना सम्भव है। इन वचनोंका सम्बन्ध स्वामीजीके जीवनसे होना चाहिए। यह

इसलिये भी ठीक लगता है, क्योंकि इन वचनोंके बाद उनके सं० १६७२ में शरीर त्यागका उल्लेख किया गया है। वे समग्र वचन इस प्रकार हैं:—

सहजादि मुक्त भेष उत्पन्न ॥ १६ ॥ मिथ्याविलि वर्ष ग्यारह ॥ १७ ॥ समय मिथ्या विली वर्ष दस ॥ १८ ॥ प्रकृति मिथ्या विली वर्ष नौ ॥ १९ ॥ माया विली वर्ष सात ॥ २० ॥ मिथ्या विली वर्ष सात ॥ २१ ॥ निदान विली वर्ष सात ॥२२ ॥ आज्ञा उत्पन्न वर्ष दो ॥ २३ ॥ वेदक उत्पन्न वर्ष दो ॥ २४ ॥ उपशम उत्पन्न वर्ष तीन ॥ २५ ॥ क्ष्यायिक उत्पन्न वर्ष दो ॥ २६ ॥ एवं उत्पन्न वर्ष नौ ॥ २७॥ उत्पन्न भेष उवसग्ग सहन वर्ष छह मास, पांच दिन, पंच दस, पन्द्रह सौ बहत्तर गत तिलक ।

सहज ही नग्न (बाल) रूपमें स्वामीजीका जन्म हुआ ॥१६॥ ११ वर्ष की उम्रमें मिथ्यात्व (गृहीत मिथ्यात्वका) विलय हुआ ॥ १७ ॥ उसके बाद १० वर्षमें समय (जीवादि पदार्थ या आत्मा विषयक) मिथ्यात्वका विलय हुआ ॥ १८ ॥ उसके बाद नौ वर्षमें प्रकृति (आन्तरिक रुचि विषयक) मिथ्यात्वका विलय हुआ ॥ १९॥ उसके बाद २१ वर्षमें क्रमसे माया, मिथ्यात्व और निदान इन तीन शल्योंका विलय हुआ ॥ २०—२२ ॥ उसके बाद गृहीत व्रतोंको उत्तरोत्तर जिनाज्ञाके अनुसार पालन करते हुए अपने परिणामोंमें मुनिपदके योग्य विशुद्धि उत्पन्न की ॥ २३—२६॥ उसके बाद उपसर्गोंको सहन करनेके साथ छह वर्ष,

पांच माह और पन्द्रह दिन तक 'उत्पन्न भेष' अर्थात् मुनिपदका पालन करते हुए वि० सं० १५७२ में इहलीला समाप्त की ।

यह छद्मस्थवाणीके उक्त वचनोंका आशय है । इस आधार पर स्वामीजीके समग्र जीवनको पाँच भागोंमें विभक्त किया जा सकता है:—

(१) बाल जीवन (२) शास्त्राभ्यास जीवन (३) स्वात्म—चिन्तन-मनन जीवन (४) ब्रह्मचर्य सहित निरतिचार व्रती जीवन (५) मुनि जीवन ।

१. बाल जीवन:—

बाल जीवनमें स्वामीजीके ११ वर्ष व्यतीत हुए । इस काल में स्वामीजीने लौकिक और प्रारम्भिक धार्मिक शिक्षा द्वारा गतद्विषयक मिथ्यात्व (अज्ञान) को दूर किया । हो सकता है कि वे ५ वर्षकी अवस्थामें अपने पिताजीके साथ अपने मामाजीके यहां गये हों और गढ़ौलाग्राममें उनकी चन्देरी पट्टके अधीश भ० देवेन्द्रकीर्तिसे भेंट[1] हुई हो । यह भी सम्भव है कि उस भेंटके समय भ० देवेन्द्रकीर्ति ने यह अभिमत प्रकट किया हो कि आपका यह बालक होनहार है । इसके शारीरिक चिह्न और हस्तरेखायें ऐसी हैं जो स्पष्ट करती हैं कि यह बालक महान् तपस्वी होकर लाखोंका कल्याण करेगा[2] ।

१-भट्टारक सम्प्रदाय ग्रन्थमें इन्हें सूरत पट्टका लिखा है ।

२-विमलवाणी पृष्ठ १७ ।

प्रसंगसे यहां मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि भ० श्रुतकीर्ति भ० देवेन्द्रकीर्तिके प्रशिष्य और भ० त्रिभुवनकीर्तिके शिष्य थे। उन्होंने स्वयं इस तथ्यका उल्लेख वि० सं० १५५२ में स्वरचित हरिवंश पुराणकी प्रशस्तिमें किया है[1]। और भ० त्रिभुवन- कीर्ति स्वामीजीके जन्म समयके बाद वि० सं० १५०५ से लेकर वि० सं० १५२२ के मध्य कभी चन्देरी पट्टके मंडलाचार्य बने, क्योंकि ललितपुरके वि० सं० १५२२के एक प्रतिमालेखमें उनका मंडलाचार्य-रूपमें उल्लेख है। इससे पूर्वका हमें ऐसा कोई प्रतिमालेख या प्रशस्ति नहीं मिली है जिसमें भ० त्रिभुवनकीर्ति का इस रूपमें उल्लेख किया गया हो। अतएव स्वामीजीके बाल-जीवनके समय या शास्त्राभ्यासके समय श्रुतकीर्तिका मुनि या भट्टारक होकर विचरना सम्भव ही नहीं दिखाई देता। वि० सं० १५२२ के पूर्व जब भ० त्रिभुवनकीर्ति चन्देरी पट्ट पर बैठे होंगे, उसके बाद ही कभी श्रुतकीर्ति ने उनसे दीक्षा ली होगी। श्रुतकीर्ति स्वामीजीके शास्त्राभ्यासके कालमें सहाध्यायी रहे हों और परस्पर मिलकर तत्त्वचर्चा करते रहे हों यह सम्भव है।

यहाँ इस बातका संकेत कर देना चाहता हूँ कि भट्टारक सम्प्रदायमें जिस भट्टारक परम्पराका जेरहटशाखाके रूपमें उल्लेख है वह वास्तवमें चंदेरी शाखा थी। चन्देरीमें इस शाखाके अनेक भट्टारकोंकी छतरीबनी हुई हैं तथा चंदेरी ललितपुर आदि के कई प्रतिमालेखों और चाँदखेड़ीके स्तम्भ लेखमें भ० देवेन्द्रकीर्तिसे

१-भट्टारक सम्प्रदाय लेखाँक ५१२

लेकर इस शाखाको चन्देरी शाखा या पट्ट कहा गया है। यह अवश्य है कि "जेरहट" भट्टारकोंका पुराना स्थान रहा है और इसलिए भ० श्रुतकीर्ति किसी कारण वश वहां चले गये और अपनी साहित्य-रचना जेरहटमें की ।

इन्हीं सब बातोंका विचार कर हमने स्वामीजीकी बालकाल में भ० देवेन्द्रकीर्तिसे भेंट हुई, यह अभिमत प्रगट किया है ।

२. शास्त्राभ्यास जीवनः–

स्वामीजीकी भेंट भ० देवेन्द्रकीर्तिसे तो पहले ही हो गई होगी और उन्होंने अपने कानोंसे अपने विषयमें उनका अभिमत भी जान लिया होगा, इससे सहज ही स्वामीजीका मन उनके (भ० देवेन्द्रकीर्तिके) सम्पर्कमें रह कर शास्त्राभ्यास करनेका हुआ हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अतएव लगता है कि ११ वर्षके होने पर वे अपने परिवारसे विदा होकर उनके पास शास्त्राभ्यास के लिए चले गये होंगे। समय शब्द, छह द्रव्य नौपदार्थ और द्रव्य श्रुत दोनोंके अर्थमें आता है। अतः 'समय मिथ्या विली वर्ष दस' से प्रकृतमें यही अर्थ फलित होता है कि ११ वर्षके होने पर २२ वर्षकी उम्रके होंगे तब स्वामीजीने अपने शिक्षागुरुकी शरणमें रहकर शास्त्रीय अभ्यास द्वारा अपने शास्त्र विषयक मिथ्यात्व (अज्ञान) को दूर किया ।

३. स्वात्मचिन्तन मनन जीवनः–

स्वामीजीका जीवन तो दूसरे सांचे में ढलना था, उन्हें कोई

भट्टारक तो बनना नहीं था, इसलिये लगता है कि वे २१ वर्ष की उम्र होने पर अपने शिक्षागुरूका सानिध्य छोड़कर सेमरखेड़ी अपने मामाके घर चले आये होंगे और वहाँके शांत निर्जन प्रदेश को पाकर एकान्तमें स्वात्मचिन्तन मननमें लग गये होंगे। यहाँ सेमरखेड़ीसे कुछ दूर पहाड़ी प्रदेश है, उसके परिसर और ऊपरी भागमें चार गुफाओंके सन्निकट एक पहाड़ी नदी है। प्रदेश बड़ा मनोहर और चित्ताकर्षक है। सम्भव है छद्मस्थवाणीका 'प्रकृति मिथ्या विली वर्ष नौ' यह वचन इसी अर्थको सूचित करता है कि स्वामीजीने ऐसा एकान्त निर्जन प्रदेश पाकर ध्यान, चिन्तन, मनन द्वारा अपनी उत्तर-कालीन जीवन-रेखा यहीं पर स्पष्ट और पुष्ट की। उनके स्वभावमें मार्गके निर्णय विषयक जो अस्पष्टता थी उसे भी इन नौ वर्षोंके चिन्तन मनन द्वारा दूर किया। अब उनके सामने एक स्पष्ट ध्येय था, जिस पर चलनेके लिये वे बलपरिपक्व हो गये।

वैसे तो ठिकानेसारकी तीनों प्रतियों[1] में स्वामीजीके अनेक स्थानों पर विचरनेका उल्लेख मिलता है, उनमें एक सेमरखेड़ी भी है, पर उन सब उल्लेखोंसे सेमरखेड़ी विषयक उल्लेखमें अन्तर है। यह उनके मामाका निवासस्थान भी था। इससे लगता है कि स्वामीजीके निवासका सेमरखेड़ी खास स्थान रहा होगा? और वहींसे वे धर्मकी प्रभावना निमित्त अन्य ग्रामों या नगरोंमें जाते रहे होंगे। मात्र इसलिये हमने उनके सेमरखेड़ीके निर्जन

१- ठिकानेसार (खुरई) पत्र २१।

प्रदेशमें गिरि गुफाओंमें स्वस्थ चित्त हो ध्यान-अध्ययन करनेका विशेष रूपसे उल्लेख किया है।

४. ब्रह्मचर्य सहित निरतिचार व्रती जीवनः-

जैसा कि हम पहले बतला आये हैं अपने जन्म-समयसे लेकर पिछले ३० वर्ष स्वामीजीको शिक्षा और दूसरे प्रकार अपनी आवश्यक तैयारीमें लगे। इस बीच उन्होंने यह भी अच्छी तरह जान लिया कि मूल संघ कुन्दकुन्द आम्नायके भट्टारक भी किस गलत मार्गसे समाज पर अपना वर्चस्व स्थापित करते हैं। उसमें उन्हें मार्गविरुद्ध क्रियाकाण्डकी भी प्रतीत हुई। अतः उन्होंने ऐसे मार्ग पर चलनेका निर्णय लिया जिस पर चलकर भट्टारकोंके पूजा आदि सम्बन्धी क्रियाकाण्डकी अयथार्थको समाज हृदयंगम कर सके। किन्तु इसके लिये उनकी अब तक जितनी तैयारी हुई थी उसे उन्होंने पर्याप्त नहीं समझा। उन्होंने अनुभव किया कि जब तक मैं अपने वर्तमान जीवनको संयमसे पुष्ट नहीं करता तब तक समाजको दिशादान करना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि ३० वर्षकी जवानीकी उम्रमें सर्व प्रथम वे स्वयंको व्रती बनानेके लिये अग्रसर हुए। छद्मस्थवाणीके 'मिथ्याविली वर्ष सात' इत्यादि वचनोंसे ज्ञात होता है कि उन्होंने मिथ्यात्व, माया और निदान इन तीन शल्योंके त्याग पूर्वक इस उम्रमें व्रत स्वीकार किये। जिनमें उत्तरोत्तर विशुद्धि उत्पन्न करते हुए वे इस पद पर सात वर्ष तक रहे।

उन्होंने अपनी रचनाओंमें जनरंजन राग, कलरंजन दोष

और मनरंजन गारवको त्यागनेका पद-पद पर उपदेश किया है। यहाँ जनरंजन रागसे चारों प्रकारकी विकथायें ली गई है। कलरंजन दोषसे दस प्रकारके अब्रह्मको ग्रहण किया गया है और मनरंजन गारवसे सम्यक्त्वके २५ मल[1] लिये गये गये हैं इससे मालूम पड़ता है कि अपने व्रती जीवनमें उन्होंने इन सब दोषोंके परिहारपूर्वक पूर्ण ब्रह्मचर्यका भी सम्यक् प्रकारसे पालन किया।

५. मुनि जीवन :–

स्वयंको आध्यत्ममय सांचेमें ढालनेके लिए और अपने संकल्पके अनुसार समाजको मार्गदर्शन करनेके लिए उन्हें जो भी करणीय था उसे वे ६० वर्षकी उम्र होने तक सम्पन्न कर चुके थे। संयमके अभ्यास द्वारा उन्होंने अपने चित्तको पूर्ण विरक्त तो बना ही लिया था, अतः वे अन्य सब प्रयोजनोंसे मुक्त होकर पूरी तरह से आत्मकार्य सम्पन्न करनेमें जुट गये (१) ठिकानेसार (खुरई) पत्र २२१ (३) ठिकानेसार (ब्र० जी०) पत्र ८५। अर्थात् उन्होंने श्रावक पदकी निवृत्ति पूर्वक मुनि पद अंगीकार कर लिया। छद्मस्थवाणीके उत्पन्न भेष उवसग्ग सहन इत्यादि वचनसे भी यही ध्वनित होता है कि साठ वर्षकी उम्र होने पर उन्होंने नियम से श्रावक पदसे निवृत्ति ले ली होगी और मुनिपद अंगीकार कर वे पूर्ण रूपसे संयमी बन गये होंगे। इस पद पर वे अनेक प्रकार के मानवीय तथा दूसरे प्रकारके उपसर्गोंको सहन करते हुए

---

१. ठिकानेसार (ब्र० जी)

६ वर्ष, ५ माह १५ दिन रहे और जेठ वदी सप्तमी सं. १५७२ को इहलीला समाप्त कर स्वर्गवासी हुए।

यह स्वामीजीका संक्षिप्त जीवन-परिचय है। इसे हमने छद्मस्थवाणीके मिथ्याविलि वर्ष ग्यारह इत्यादिके आधार पर लिपिबद्ध किया है। यद्यपि छद्मस्थवाणीके उक्त वचन गूढ़ हैं। पर उनमें स्वामीजीकी जीवन-कहानी ही लिपिबद्ध हुई है, यह पूरे प्रकरण पर दृष्टिपात करनेसे स्पष्ट हो जाता है। उनकी जीवनीको लिपिबद्ध करते समय हमने छद्मस्थवाणीके उक्त वचनों को और तात्कालिक परिस्थितिको विशेष रूपसे ध्यानमें रखा है। इसमें हमने अपनी ओरसे कुछ भी मिलाया नहीं है और न उनके विषयमें फैली अनेक उलट पुलट मान्यताओंकी ही चर्चा की है।

स्वामीजीका जीवन गौरवपूर्ण था। वे छल प्रपंचसे बहुत दूर थे। भय उनके जीवनमें कहीं भी नहीं था। उन्हें अनादिनिधन अपने ज्ञायकस्वभाव आत्माका पूर्ण बल प्राप्त था। वे उसके लिये ही जिये और उसकी भावनाके साथ ही स्वर्गवासी हुए। ऐसे दृढ़ निश्चयी महान् आत्माके अनुरूप हमारा जीवन बने, यह भावना है।

साहित्य रचना--

स्वामीजीने अपने जीवनमें अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना की। उनमें आचारकी दृष्टिसे श्रावकाचार मुख्य है और अध्यात्म की दृष्टिसे भयखिपनिक, ममल पाहुड, उपदेश शुद्धसार तथा

ज्ञानसमुच्चयसार मुख्य हैं। तीन बत्तीसीकी रचना भी प्रायः इसी दृष्टिकोणसे हुई है। सिद्धि स्वभाव ग्रन्थका अपना अलग स्थान है। मुख अध्यात्मकी ओर ही है। अन्य सब ग्रन्थोंकी भिन्न भिन्न प्रयोजनोंको लक्ष्यमें रखकर रचना हुई है। स्वामीजीका समग्र जीवन अध्यात्मस्वरुप होनेसे उन सब रचनाओंके द्वारा पुष्टि अध्यात्मकी ही होती है। उक्त सब रचनाओंमेंसे ६ रचनाएं गद्यमय हैं। भाषाकी स्वतन्त्रता है। स्वामीजीने किसी एक भाषा और व्याकरणके नियमोंमें अपनेको जकड़ कर रचनाएं नहीं की हैं। जहां जिस भाषामें अपने हृदयके भावोंको व्यक्त करना स्वामीजीको उचित प्रतीत हुआ वहां उस भाषाका अवलम्बन लिया गया है। रचनाओंमें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और बोल-चालकी हिन्दी इन चारों भाषाओंके शब्दोंका समावेश किया गया है। अनेक स्थलों पर मुहावरेके वाक्योंको भी स्थान दिया गया है। कई स्थलों पर रचनाका प्रवाह गूढ़ हो जानेसे स्वामीजी के हृदयकी थाह लेनेके लिये अथक परिश्रम अपेक्षित है।

स्वामीजी मर्मज्ञ तत्त्ववेत्ता होनेके साथ संगीतज्ञ भी रहे हैं। लगता है कि वे अपने स्वात्मचिन्तन-मनन और जनसम्पर्कके समय अपनी इस सहज प्राप्त सर्वजनप्रिय कोमल कलाका बहुलता से उपयोग करते रहे होंगे। ठिकानेसारकी तीनों प्रतियोंमें ममल-पाहुडकी कौन फूलना किस निमित्ति किस ग्राममें रची गयी, इसका कुछ विवरण लिपिबद्ध किया गया है। उससे उक्त तथ्यकी पुष्टिको पूरा बल मिलता है। इस पर से मुझे लगता है कि

स्वामीजीने अपनी ग्रन्थ-रचनाका प्रारम्भ ममलपाहुड़से ही किया होगा। मुनिपद अंगीकार करनेके बाद अवश्य ही उन्होंने अपने यातायातके क्षेत्रको सीमित कर दिया होगा। श्रावकके सात शीलों को स्वामीजीने पाँच महाव्रतोंके साथ मुनि-पदमें रहते हुए अपने अधिकतर समयको ध्यान अध्ययनमें ही लगाया होगा। स्पष्ट है किउन्होंने अधिकतर मौलिक रचनाओंका सृजन श्रावक अवस्थामें ही कर लिया होगा। मेरी बहुत समयसे यह तीव्र इच्छा रही है कि मैं मध्यप्रदेश बुन्देल-खंडके इस महान सन्तके यथार्थ जीवनके विषयमें कुछ लिखूँ। इसके लिए मैं कुछ समयसे प्रयत्नशील भी था। मुझे प्रसन्नता है कि अभी तक मैं इस सम्बन्धकी जो थोड़ीसी सामग्री संचित कर सका उसीका यह परिणम है जो इस रूपमें समाजके सामने प्रस्तुत है। अभी इस विषय पर बहुत कुछ काम होना है। मुझे आशा है, सबके सहयोगसे उसमें अवश्य ही सफलता मिलेगी।

इस कार्यमें मुझे श्रीमान् श्रीमन्त सेठ भगवानदासजी शोभालालजी सागर और उनके बड़े सुपुत्र श्रीयुत भाई डालचंदजी का सक्रिय सहयोग मिला है। ठिकानेसारकी तीनों प्रतियां उन्हींके हार्दिक सहयोगसे प्राप्त हो सकी। स्वामीजी द्वारा रचित सभी मुद्रित ग्रन्थ उन्होंने भिजवाये। इसके लिये मैं उनका हृदयसे आभारी हूं। इस सम्बन्धकी अभी कुछ और सामग्री मेरे पास संचित है। जिसका उपयोग मैं इसमें नहीं कर सका। स्वामीजीके विषयमें दूसरे लेखकों द्वारा जो कुछ भ्रामक लिखा गया उस पर

भी अभी मैंने विचार नहीं किया है। जनश्रुतिके अनुसार उनके विषयमें जो मान्यतायें प्रचलित हैं उन पर भी सांगोपांग विचार करना है। मैं सोचता हूँ कि जब उनके समग्र साहित्यका आलोडन कर उसे लिपिबद्ध किया जाय तभी इन सब तथ्यों पर विचार करना उचित होगा। इसलिए अभी उन सबको दृष्टिओझल कर दिया है। अभी मैंने स्वामीजीकी जीवनी के जिस परिष्कृत रूपको साधार प्रस्तुत किया है उसमें मैं कितना सफल हुआ हूँ इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ता हूँ।

बी. २/२४६
निर्वाण भवन,
रवीन्द्रपुरी,
वाराणसी-५

—पंडित फूलचंद्र जैन
सिद्धान्तशास्त्री

धर्मदिवाकर श्री ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके प्रति—

आभार—प्रदर्शन

श्री ब्र० जीने श्री तारण स्वामीजी रचित इन तीन छोटे-छोटे ग्रन्थोंका ही नहीं प्रत्युत्त और भी बड़े-बड़े ग्रन्थोंका (श्री श्रावकाचार, श्री ज्ञान समुच्चयसार, श्री उपदेश शुद्धसार, श्री चौबीस ठाना, श्री त्रिभंगी सार तथा श्री ममल पाहुडजी ग्रन्थका तीन भागोंमें) विशद् अर्थ और भावार्थ हिन्दी गद्यमें करके श्री सन्त तारण तरण मण्डलाचार्य रचित चौदह ग्रन्थोंमेंसे उपरोक्त ६ ग्रंथों का आध्यात्मिक मर्म स्पष्ट करके तारण समाजका ही नहीं अखिल जैन समाजका बहुत भारी उपकार किया है क्योंकि श्री तारण स्वामीकी रचना संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश मिली जुली भाषामें होनेसे सर्व साधारण जन, उनका सही अर्थ न जाननेके कारण उसके लाभसे वंचित रहे। जब श्री ब्रह्मचारीजीकी भाषा टीका सामने आई तथा उस भाषा टीकाके आधार पर कवि रत्नश्री अमृतलालजी चंचल एवं समाज रत्न पं० जयकुमारजीकी तथा पं० चंपालालजीकी गद्य पद्य रचनाएँ समाजके सामने आने पर तारण साहित्यका विकास हुआ। तत्पश्चात् भारतके आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामीने श्री श्री सन्त तारण स्वामीके ग्रन्थोंका अध्ययन कर उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। सोनगढ़की अपनी प्रवचन शृंखलामें उन्होंने श्री तारण स्वामीके ग्रन्थों पर तीन वर्ष तक प्रतिवर्ष आठ-आठ दिन प्रवचन किए जो अष्ट प्रवचन भाग १, २ के नामसे प्रकाशित हुए हैं, तीसरा भाग भी शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है। अष्ट प्रवचनका प्रथम भाग

गुजरातीमें भी प्रकाशित हो चुका है श्री तारण स्वामीके ग्रन्थोंका जैन समाजके मंदिरोंमें प्रवचन एवं अध्ययन होता है। भाषा टीका होनेके बाद समझमें आया कि श्री तारण स्वामी क्या थे वा उनके द्वारा रचित चौदह ग्रन्थ क्या है कि जिनकी रचना शैली किस अद्वतीय आध्यात्मिक ढंगसे हुई है कि जिनकी एक एक गाथामें करणानुयोग चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन तीनों ही अनुयोगोके द्वारा अमृतधारा जैसी आत्म औषधि इस जीवको पिलाई है कि जिससे यह मानव अपने परिणामोंकी निर्मलता रखते हुई यथायोग्य अपने पदके अनुरुप व्यवहारका पालन करते हुए शुद्धोपयोग (आत्मलक्ष) की साधनामें अग्रसर रहे तभी वह अपना सही कल्याण (मोक्षमार्ग) की साधना कर सकेगा अन्यथा या तो जैसा व्यवहाराभाषी मिथ्यादृष्टि अनादिकालसे बना रहा है वैसा ही बना रहकर जीवन पूरा कर देगा अथवा निश्चयाभाषी मिथ्यादृष्टि बनकर मोक्षमार्गसे वंचित रह जायेगा। अतएव ब्र० श्री शीतलप्रसादजीने श्री तारण स्वामीके इस मर्मको स्पष्ट कर कि पदके अनुरूप सम्यक् व्यवहारका पालन करते हुए निश्चयका लक्ष्य अर्थात् आत्मीय आनन्दकी अनुभूति हर क्षण जो मानव रखता है वही मोक्षमार्गी होता है। अन्यथा पुण्य पापके ही चक्कर में फँसा रहकर चौरासीके ही भ्रमणमें जैसा अनादिकालसे पड़ा है वैसा ही पड़ा रहेगा। श्री ब्रह्मचारीजीके इस उपकारसे तारण समाज आभारी हुई थी और आगामी सदैव रहेगी।

दिनांक ५-३-७७

ब्र० गुलाबचंद

श्री तीर्थक्षेत्र निसईजी, मल्हारगढ़

❀ सम्मति ❀

पूज्य श्री तारण स्वामीजीके चौदह ग्रन्थोंमेंसे तारण त्रिवेणी, भक्तामरके समान ही दैनिक पूजा-पाठयक्रममें प्रचलित है। श्री ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने जो तारण त्रिवेणीकी टीका की है उसमें अन्वय आदि सहित अर्थ किया है यह उनका परिश्रम है। श्री पंडित पूजाजी, श्री मालारोहणजी, श्री कमलबत्तीसीजी इन प्रत्येक ग्रन्थोंमें ३२-३२ गाथाएँ हैं जो अपना निराला अस्तित्व रखती है। प्रत्येक गाथामें आध्यात्मिक स्वर लहरीकी मधुर ध्वनि प्रतिभासित होती है। अनेक गाथाएँ रत्नत्रयकी उद्योतक हैं। जिज्ञासुजनोंके लिए इन गाथाओंका गम्भीरता पूर्वक अध्ययन मनन करने पर अभूतपूर्व आध्यात्मिक आनन्दका रसास्वादन प्राप्त होता है। स्याद्वादकी अपेक्षासे इन ग्रन्थोंमें निश्चय-व्यवहारकी संधिका यथोचितरुपेण उल्लेख किया गया है। इस प्रकार ३२-३२ गाथाओंमें श्री तारण स्वामीजीने इन ग्रन्थोंमें गागरमें सागर भरने जैसी महत्वपूर्ण आध्यात्मिक अनुभूतियोंका दिग्दर्शनकराया है, जो प्रत्येक श्रावकको स्वाध्याय करनेके उपयोगमें लेना चाहिए।

ब्र० विमलादेवी

श्री जिन तारणतरण आचार्य एवं उनकी ग्रंथ – रचना

(श्री कपूरचंद समैया, सागर)

जैनदर्शन और उसके साहित्य पर दृष्टि डालनेसे एकविशाल समुद्र सा प्रतीत होता है। भगवान महावीर और उनके पश्चात् हुए आचार्योंने इसके कलेवरको भरनेमें सभी प्रकारका सहयोग दिया है। जैनदर्शनमें अध्यात्मको पूर्ववर्ती आचार्योंने परमार्थ कहा है। अनादिसे संसारमें भ्रमण करते एवं दुख भोगते हुए जीवको प्रयोजनभूत शाश्वत सुखकी इच्छा एवं उसका उपाय ही परमार्थ है। दिगम्बर जैन आचार्योंने इस विषय पर भाषाओंमें अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्द आचार्यके समय-सार आदिसे लगाकर नाटक समयसार एवं पंडित प्रवर टोडरमल जीके मोक्षमार्ग प्रकाशक तक। जब भी व्यवहार क्रियाकाण्डोंकी प्रमुखता हुई और वास्तविक तत्त्व निर्णयकी अवहेलना हुई तब-तब महान आचार्यों एवं विद्वानोंने जैन आगमके इस मुख्य अंगके प्रचार प्रसार एवं भटके हुए मानवोंको सच्चा मार्ग बतानेके लिये सरल सुबोध भाषा शैलीमें अध्यात्म ग्रंथोंकी रचना की। आचार्यों की इस परंपरामें विक्रमकी सोलहवीं शताब्दी (वि० सं० १५०५–१५७२) में मध्य प्रदेशमें आचार्य श्री जिन तारणतरण स्वामी हुए। उस समय यद्यपि दिल्ली पर बहलोल लोधीका शासन था किन्तु म.प्र.(जबलपुर, कटनी, छिंदवाड़ा, सागर)में गौड़ राजाओं

का राज्य था। दिगम्बर जैन समाजमें भट्टारक प्रथा चालू थी। यह क्षेत्र चंदेरीकी भट्टारक गद्दीके प्रभाव क्षेत्रमें आते थे। भट्टारकोंको राजकीय सम्मान प्राप्त होनेके कारण समाज पर उनका काफी प्रभाव था। पद और अधिकारके कारण उनके आचारणमें शिथिलता आ गई थी और तीर्थंकरोंके साथ शासन-देवी-देवताओं (पद्मावती क्षेत्रपाल आदि) की मूर्तियोंकी भी स्थापना एवं पूजा होने लगी थी। जंत तंत्र मंत्र झाड़ाफूंकी भी चालू हो गई थी जिसे जैनदर्शनमें गृहीत मिथ्यात्व कहा है। जैनदर्शनकी मुख्य धारा तत्वज्ञान एवं सम्यक् आचरणसे हटकर समाजमें बाह्य क्रियाकाण्डोंको ही धर्म मानकर मनमाने आचरण का बोलबाला हो गया था। वह धार्मिक क्रांतिका काल था। इस क्रांतिकालमें श्री जिन तारण तरण हुए।

जीवन-परिचय

श्री जिन तारण तरण आचार्यका पूर्ण परिचय तो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु उनके ग्रंथ श्री छद्मस्थवाणी एवं किंवदंतिओंके आधार पर जो प्राप्त हैं उसके अनुसार उनके पिता का नाम गढ़ा साहु एवं माताका नाम वीर श्री था। पुष्पावती नगरीमें (वर्तमान कटनी नगरके पास बिलहरी ग्राम) जो उस समय वैभवशाली प्रमुख केंद्र था (जहाँ आज भी बड़े बड़े खंडहर विस्तृत भूभागमें फैले हैं) उनका जन्म विक्रम सं. १५०५ अगहन शुक्ला सप्तमीको हुआ था। पिता परवार जातिके गोहिल्ल मूरी और राज्य शासनमें प्रमुख पद पर थे। बचपनसे ही श्री तारण तरण तीक्ष्ण बुद्धिके थे और उनके आचरणमें विलक्षणता थी।

किसी कारण बादशाहसे मनमुटाव हो गया और गढ़ा साहू सिरोंज में आकर रहने लगे, यहाँ पर तारण स्वामीके मामा भी रहते थे। आज भी सिरोंजके पास सेमरखेड़ी ग्राममें वह हवेली जीर्णशीर्ण अवस्थामें है जहाँ श्री तारण स्वामी चिन्तन करते थे। जैसा कि प्रायः महापुरुषोंके जीवनमें होता है इनके जीवनमें भी कई चमत्कार पूर्ण घटनायें घटीं। जैनदर्शनके मान्य पंडित फूलचन्द्रजी सिद्धांताचार्य वाराणसीकी खोजके अनुसार संभवतः तारण तरण स्वामीने भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिसे शिक्षा ली थी। श्री भट्टारक श्रुतकीर्ति उनके सहपाठी गुरु भाई थे। ये बाल ब्रह्मचारी थे एवं ६० वर्षकी आयुमें मुनि दीक्षा ली। इस पद पर वे ६ वर्ष ५ माह १५ दिन रहे और जेठ वदी ६–७ सं० १५७२ को शरीर छोड़ा।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है उस समय जैनसमाजमें तत्त्व-अभ्यासकी जगह बाह्य क्रियाकांडों, आडम्बरों एवं रूढ़ियोंने ले ली थी। जन साधारण भट्टारकोंके चंगुलमें फंसा था। तारण स्वामीने जैन शास्त्रोंका गहन अध्ययन किया अध्यात्म-शास्त्रोंकी विशेष रुचि थी ही। समयसार, प्रवचनसारके साथ साथ आचार्य योगेन्द्रदेवके परमात्म-प्रकाशका भी गहन अध्ययन मनन किया। इसकी शैलीका आभास स्वामीजी द्वारा बनाये ग्रंथोंमें मिलता है। बाल्य कालसे ही उदासीन वृत्ति होनेके कारण एकांत प्रिय थे। सिरोंज सेमरखेड़ीके पास घने जंगलमें आत्मसाधना की और वहीं उन्हें सम्यक्‌दर्शन प्राप्त हुआ जिसका वर्णन छद्मस्थ वाणी ग्रन्थमें मिलता है। आज भी उस जंगलमें वे गुफामें विद्यमान हैं जहां बैठकर स्वामीजी आत्मसाधनारत रहे।

आचार्ययोगेन्द्र देवके समान ही स्वामीजीने अपने ग्रन्थोंकी रचना जन साधारणकी उस समयकी भाषा-बोलीमें की है जिससे कि आसानीसे समझी जा सके। गृहीत मिथ्यात्व, अगृहीत मिथ्यात्व, सात व्यसन, एवं बाह्य आडम्बरोंसे विमुख करनेके लिये स्वामीजीने तीखी भाषा तकका उपयोग किया है। ग्रन्थ-रचनाके साथ-साथ स्वामीजीने मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यभारत आदि प्रदेशोंमें विहार किया। अपने प्रभावशाली उपदेशोंके द्वारा जनजनको संबोधित किया। उनके उपदेशोंको सुनकर लाखोंकी संख्यामें अजैन जनताने जैनधर्म अंगीकार किया। आडम्बरों और रूढ़ियोंके विरोध करनेके कारण समाजके कतिपय स्वार्थी एवं अहंकारी प्रमुख जन इनके विरोधी हो गये। कहा जाता है कि इन्हें एक बार विष देकर एवं एक बार बेतवा नदीमें डुबाकर मारनेका प्रयत्न भी किया गया परन्तु आयु शेष होनेके कारण चमत्कारिक ढंगसे बच गये। इस घटनासे इन्हें विरक्ति हो गई और मल्हारगढ़ नगरके पास बेतवा तट पर जंगलमें आत्म-साधना करने लगे। संभवतः इसी शांत वातावरण में स्वामीजीने अपने १४ ग्रन्थोंमेंसे अधिकांशकी रचना की। अपने जीवनके अंतिम क्षण व्यतीत किये। इसी स्थान पर जेठ वदी ६ वि. सं. १५७२ को ६७ वर्षकी आयुमें स्वामीजीका समाधिमरण हुआ। उनकी समाधिस्थली पर आज विशाल स्मारक खड़ा है। यह स्थान बीना कोटा रेल्वे लाईन पर मुंगावली स्टेशन से १० मील पर है। बेतवा नदीके पास है। पहले यहाँ घना जंगल

था परन्तु अब खेती होती है। समीप ही मल्हारगढ़ नामक प्राचीन कस्बा है व किला भी है। स्वामीजीका यह भव्य स्मारक दर्शनीय है। इसमें चैत्यालय, विशाल स्वाध्याय भवन, धर्मशालाएं हैं जहाँ हजारों आदमी ठहर सकते हैं। प्रति वर्ष फाल्गुनमें मेला भरता है जिसमें तारण समाजके लोग दूर दूरके प्रांतोंसे आते हैं। भजन-पूजन एवं स्वाध्याय प्रवचनके कार्यक्रम निरंतर चलाते हैं। कभी कभी विशेष मेलाका आयोजन भी समाजके धनी मानी सज्जन कराते हैं। ऐसे ही एक अवसर पर सन् १९६५ में जब सागर निवासी समाज भूषण सेठ भगवानदास शोभालालजीने मेला प्रतिष्ठा कराई थी उस समय अन्य गणमान्य व्यक्तियोंके साथ महान आध्यात्मिक संत प्रवक्ता पूज्य श्री कानजीस्वामी पधारे थे और वहाँ ४ प्रवचन भी तारण स्वामीके ग्रन्थों पर किये थे। इसी अवसर पर फतेपुरके विद्वान प्रवक्ता पं. बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता भी ६०० स्त्री-पुरुषोंके संघ सहित आये थे। श्रद्धेय ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने भी यहाँ प्रवास किया था। और उन्हें इस रमणीय पवित्र समाधि स्थलने बहुत प्रभावित किया था। यह "निसईजी" के नामसे प्रसिद्ध है।

सिरोंजके समीप सेमरखेड़ीमें स्वामीजीने साधना कर आत्म ज्ञान प्राप्त किया था एक विशाल स्मारक बना है। यहाँ प्रति वर्ष वसंत पंचमीको मेला लगता है और दूर दूरसे लोग आते हैं। दमोह के पास पथरिया स्टेशन से ७ मील पर "सूखा निसई" जी पर भी एक विशाल स्मारक है यहाँ स्वामीजीने विहारके

समय प्रवास किया था यहाँ पर प्रतिवर्ष स्वामीजीकी जन्म-जयंति (अगहन शुक्ला सप्तमी) पर मेला लगता है ।

ग्रंथ-रचना एवं सामान्य परिचय

जैसा कि ऊपर कह आये हैं तारण स्वामीके मनमें बाह्य आडम्बर एवं शिथिलाचारको दूर करने की तीव्र इच्छा थी । इसके लिये समाजको जैन आगम और उनके तत्त्वोंसे अवगत कराना आवश्यक था । जानकारीके अभावमें जो भी उसे बताया जाता उसे ही भगवानकी वाणी समझकर स्वीकार करना पड़ता था । इसके लिये स्वामीजीने उस समयकी प्रचलित भाषामें जैन-दर्शनके मर्मको समझानेके लिये ग्रंथोंकी रचना की । इन ग्रन्थोंकी भाषाकी मौलिकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । तारण समाजकी उदासीनता, जैन समाजमें विद्वानोंकी कमी एवं गुरु तारण स्वामीकी धरोहर की रक्षाकी भावनाके कारण स्वामीजीके ग्रंथोंका तारण समाजके बाहर प्रचार न हो सका और लगभग ५०० वर्ष तक उनकी टीका आदि नहीं हुई । श्री मथुराप्रसाद समैया सागर वालोंकी प्रेरणासे जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने इन ग्रंथोंको देखा और वे बहुत प्रभावित हुए । निष्पक्ष अध्यात्म-प्रेमी और तत्त्व-जिज्ञासु होनेके कारण उन्होंने इनकी टीका व अर्थ करने- का आग्रह स्वी-कार किया और ९ ग्रंथोंका अन्वयार्थ एवं भावार्थ सहित अनुवाद किया । ये सभी ग्रंथ प्रकाशित भी किये गये थे एवं आज भी उपलब्ध हैं । इसके पश्चात समाज रत्न पं० जयकुमारजी सिंगौड़ी विनासीने आचार मत विचार मत नामसे पद्यानुवाद किया ।

त्रिचार मतमें (१- श्री पंडित पूजा, २-श्री मालारोहण, ३ श्री कमल बत्तीसी का) और आचार मतमें (श्रावकाचार) का पद्यानुवाद है। अनुवाद सुन्दर एवं अर्थानुगामी है। इसके साथ साथ पंडितजीने तारण साहित्यके नामसे और भी फुटकर रचनाएं की हैं। श्री छद्मस्थ वाणीका भी अनुवाद किया है जो अभी अप्रकाशित है। कविरत्न श्री अमृतलालजी चंचल गाड़रवाड़ा निवासीने "तारण त्रिवेणी" के नामसे सन् १६४० में तीन बत्तीसी; १-श्री पंडित पूजा, २- श्री मालारोहण, ३-श्री कमल बत्तीसीका सुन्दर पद्यानुवाद किया जो अत्यधिक लोकप्रिय हुआ और समाजमें उसका व्यापक प्रचार भी हुआ। श्री चंचल जीने ज्ञान समुच्चयसार ग्रन्थका भी पद्यानुवाद किया है। सोहागपुर निवासी पं० चंपालालजीने भी तारण स्वामीके शास्त्रोंका गहन अध्ययन कर कुछ ग्रन्थोंका अपनी शैलीमें पद्यानुवाद किया जो प्रकाशित भी हुआ है।

भारतके महान आध्यात्मिक संत प्रवक्ता श्री कानजीस्वामीने भी स्वामीजीके ग्रन्थोंका अध्ययन-मनन किया और वे बहुत प्रभावित हुए। वि० सं० २०२१ में पर्यूषण पर्व पर सागर निवासी समाजभूषण सेठ भगवानदास शोभालाल एवं अन्य मुमुक्षुओंके आग्रह पर स्वामीजीने तारणतरण स्वामीके ज्ञानसमुच्चयसार ग्रन्थ पर आठ प्रवचन किये और इससे स्वामीजी बड़े प्रभावित हुए उन्होंने बार बार कहा कि जो बात आचार्य कुन्दकुन्द स्वामीने कही है वही बात तारण तरण स्वामीने कही है कोई अन्तर नहीं है। पुनः आग्रह करने पर सं० २०२८ में स्वामीजीने

तारण स्वामी कृत "ममलपाहुड" "उपदेश शुद्ध सार" एवं "श्रावकाचार" ग्रन्थों पर प्रवचन किये। दोनों बारके प्रवचन अष्ट प्रवचन भाग १एवं २ के रुपमें संलग्न कर अपनी ओरसे प्रकाशित कराकर श्री सेठ भगवानदास शोभालाल सागर वालोंने समाजमें वितरित कराये। इस प्रकार श्रीमद् तारण तरण स्वामीके ग्रन्थोंका प्रचार जैन समाजमें हो रहा है और मुमुक्षु जन आध्यात्मिक रसका लाभ ले रहे हैं। श्री कानजी स्वामीजीने तारणस्वामी के ग्रन्थों पर ८ प्रवचन और किये हैं जो शीघ्र ही प्रकाशित हो रहे हैं। एक प्रवचन 'द्रव्यदृष्टि' के नामसे पुस्तिकाके रूपमें अलग प्रकाशित हुआ है जो स्वामीजीने सेठ श्री भगवानदास शोभालालजीके मकानके उद्घाटनके समय सोनगढमें दिया था। इस प्रकार कुल २५ प्रवचन तारण साहित्य पर अभी तक स्वामी जी ने किये हैं। जो अध्ययन करने योग्य हैं।

श्रीमद् तारण तरण स्वामीके ग्रन्थों पर विशिष्ट विद्वानोंके अभिमतः—

आध्यात्मिक संत पूज्य कानजीस्वामी, सोनगढ़

(अष्ट प्रवचन भाग १–२)

श्री तारण तरण स्वामी आध्यात्मिक रसिक थे उनके द्वारा यह शास्त्र रचा गया है। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य आदि दिगम्बर संतोंकी आम्नायके अनुसार सर्व ज्ञानका सार उन्होंने आध्यात्म-शैलीसे दिखाया है। "ज्ञान समुच्चयसार" अर्थात् संतोंका कहा हुआ सर्व श्रुतज्ञानका सार क्या है यह इसमें दिखाया है।

प्रसिद्धि नहीं हुई । न उनका संशोधन व प्रकाशन हुआ। प्रत्युत उक्त समाजमें उनके ग्रन्थोंको गुप्त रखनेकी प्रवृत्ति सी हो गई थी। पर कोई समाज चाहे वह कितनी ही कट्टर क्यों न हो समयकी मांगसे बच नहीं सकती। समय एक ऐसा व्यक्ति खड़ा कर देता है जो उस कट्टरताके दुर्गको जीतकर ज्ञान स्वातंत्र्य की धारा बहा देता है। गत आठ-दस वर्षोंसे जैनधर्म भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का ध्यान तारण साहित्य की ओर गया है जिसके फलस्वरुप उक्त समाजके उन्नतिशील सज्जनोंके सहयोग के द्वारा वे उस साहित्यकी अनेक निधियोंको प्रकाशमें लाने में सफल हुए हैं। इन ग्रन्थोंकी भावभंगी बहुत कुछ अटपटी है। जैन धर्मके मूल सिद्धांत और अध्यात्मवादके प्रधान तत्त्व तो इसमें स्पष्ट झलकते हैं पर कर्ताकी रचना-शैली किसी एक सांचेमें ढली और एक धारामें सीमित नहीं है। यह स्पष्ट है कि कवि किसी सीमाको बांधकर अपने विचारव्यक्त नहीं कर रहे हैं किंतु विचारों का उद्रेक जिस प्रकार जिस ओर जब चला गया तब तैसा ग्रन्थित करके उन्होंने रख दिया और इस कार्यमें उन्होंने जिस भाषाका अवलंबन लिया है वह तो बिलकुल निजी चीज है। वह भाषाके समस्त देश प्रदेश भेदों व कालके परे हैं न वह संस्कृत है न कोई प्राकृत अपभ्रंश है न कोई देशी प्रचलित भाषा है, मेरी समझमें उसे "तारन तरन भाषा" ही कहना ठीक होगा जिसका परिचय उन ग्रन्थोंके अवलोकन से ही पाया जा सकता है ।

इस साहित्यके तीन छोटे छोटे ग्रन्थ "पंडित पूजा" "मालारोहण" और "कमल बत्तीसी" इनमें शुद्ध भावना, शुद्धाचरण और शुद्ध ज्ञान पर जोर दिया गया है पर जो गहन और मनोहर भाव उनमें भरे हैं उनका उक्त अटपटी शैलीके कारण पूरा लाभ उठाया जाना कठिन है। उनके ऐसे रुपांतरकी जरुरत थी जो सरल स्पष्ट और हृदयग्राही हो। ऐसा रुपांतर उसे अमृत लाल चंचलके पद्यानुवादमें देखनेको मिला। चंचलकी कविता मूलके भावकी रक्षा करती हुई अत्यन्त सुंदर और लोकरुचिके अनुकूल है। मुझे आशा और विश्वास है कि इस कविता द्वारा तारण स्वामीके उपदेशोंका अच्छा प्रचार होगा। यह तारण त्रिवेणी जनता का कल्याण करेगी।

पं० परमेष्टीदास जैन न्यायतीर्थ, ललितपुरकी सम्मति

(ज्ञान समुच्चयसारकी भूमिकामें)

सोलहवीं शताब्दीमें बुन्देलखंड में संत पुरुष श्री तारण स्वामीका जन्म हुआ, जिन्होंने अपनी निराली भाषा शैलीमें उच्चतम आध्यात्मिक तत्त्वोंका निरुपण किया है। १४ ग्रंथोंके रुपमें उसका मुद्रण भी हो चुका है। अध्यात्म पुरुष श्री तारण स्वामी द्वारा रचित सूत्रों और गाथाओंका यथार्थ अर्थ समझ पाना कठिन काम है क्योंकि उनकी भाषाशैली अलग प्रकार की है। जिन विशेषज्ञ विद्वानोंने उन्हें समझा, जाना और उसके यथार्थ रहस्यको सरल सुबोध भाषामें प्रस्तुत किया है वे निश्चय ही धन्यवादके पात्र हैं।

वर्तमान युगमें आध्यात्मिक महापुरुषोंमें श्री कानजी स्वामी का नाम प्रमुख है, उन्होंने श्री तारण स्वामीके अध्यात्म ज्ञानकी महिमा गाई है और उनकी आध्यात्मिक वाणी पर प्रवचन किये हैं जिनके दो भाग "अष्ट प्रवचन" मुद्रित हो चुके हैं। अध्यात्म योगी श्री तारण स्वामीकी वाणीका सरल पद्य और गद्यमें अनुवाद होकर प्रकाशित होना राष्ट्र भाषाके कोषमें समृद्धि और गौरवका प्रतीक है। श्री ब्रह्मचारी गुलाबचंदजी महाराज इस ज्ञान (यज्ञ) में प्रमुख होता एवं प्रेरक हैं। पं० बुद्धिलाल श्रावक देवरी निवासीने जिन्होंने नाटक समयसारकी भाषा टीका भी की है श्री पंडितपूजा ग्रंथकी भूमिकामें (सन् १९३७ ई०) लिखा है-

सोलहवीं शताब्दीमें प्रसिद्ध स्वामी तारण तरणजी इस पंडितपूजा ग्रंथकी रचना करके जैनसमाजका असीम उपकार कर गये हैं। स्वामीजीने इस ग्रन्थको उस समय प्रचलित संस्कृत प्राकृत मिश्रित भाषामें लिखा है। .... यह ग्रन्थ अध्यात्म विषय का मानो स्वामी कुन्दकुन्द आचार्यकी कृति का सार ही है। इसका मर्म जाननेके लिये नय-ज्ञानकी नितांत आवश्यकता है। और जैन मतकी सर्व विद्या स्याद्वाद पर ही निर्भर है। इसलिये इस ग्रन्थके रस-पिपासुओंको उचित है कि वे पहले नय चक्रादि ग्रंथोंके द्वारा नयका स्वरुप समझ लेवें पश्चात इस ग्रन्थमें प्रवेश करें।

श्री जिन तारण तरण आचार्य द्वारा रचित ग्रन्थ और उनका विषय परिचय

१. तारण तरण श्रावकाचारः– (श्लोक ४६२)

यह ग्रन्थ किसी एक भाषामें नहीं है, इसमें संस्कृत, प्राकृत, देशभाषाके शब्द हैं। इसमें सम्यक्दर्शन तथा शुद्धात्मानुभवकी दृढ़ता स्थान स्थान पर बतलाई गई है। कोई कथन भी कुन्दकुन्दाचार्य एवं उमास्वामीके जैन सिद्धांतके प्रतिकूल नहीं है। प्राचीन दिगम्बर जैन शास्त्राधारसे ही ग्रन्थ संकलित किया गया है। पढ़ने पर पद पद पर अध्यात्म-रसका स्वाद आता है। इसके कर्ता श्री जिन तारण स्वामी अध्यात्म-शास्त्र व व्यवहार-शास्त्रके अच्छे मर्मी थे। वे सिद्धांतके मर्मी थे इसका प्रमाण इस श्लोकमें मिलता है —

ज्ञान चारित्र संपूर्ण, क्रिया त्रेपन संयुतं।
पंच व्रत पंच समिति, गुप्तित्रय प्रति पालकं ॥ ४४६ ॥

सम्यक्दर्शनं ज्ञानं, चारित्रं शुद्ध संयमं।
जिन रुपं शुद्ध द्रव्यार्थं, साधओ साधु उच्यते ॥ ४४८ ॥

भावार्थः— जो ज्ञान-चारित्रसे पूर्ण हों, श्रावककी त्रेपन क्रियासे संयुक्त हों, पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्तिके

पालक हों व जो शुद्ध संयमको, रत्नत्रय धर्मको, अरहंतके शुद्ध द्रव्यको साधते हों वह साधु हैं। यह साधुका बहुत बढ़िया स्वरुप है।

मिथ्यात्वं परम दुःखं, सम्यक्तं परमं सुखं।
तत्र मिथ्या मतं त्यक्तं, शुद्ध सम्यक्त साधयं ॥

मिथ्यादर्शन महान दुःखका कारण है तथा सम्यग्दर्शन परम सुखका कारण है इसलिए मिथ्यादर्शनका त्याग करके शुद्ध सम्यक्दर्शनको अपना साथी बनाये रखें।

२. श्री पंडितपूजा ३. श्री मालारोहण
४. श्री कमलबत्तीसी

(तीनोंकी श्लोक संख्या ३२-३२ पद्यमें)

इन्हीं तीनों ग्रन्थोंका संकलन प्रस्तुत प्रकाशनमें "तारण त्रिवेणी" के नामसे किया गया है। तारण स्वामीकी ये तीनों संक्षिप्त रचनायें हैं प्रत्येककी श्लोक संख्या ३२ है। इसलिए इन तीनों ग्रन्थोंकी प्रसिद्धि तीन बत्तीसीके नामसे है। तारण समाजमें इनका नियमित पठन-पाठन दैनिक स्वाध्यायका अंग है। तारण समाजमें प्रचलित विवाहविधिमें जिसे (मालाजी) कहा जाता है- मालारोहण ग्रंथके ३२ श्लोकोंका सस्वर पाठ किया जाता है पश्चात् वर-वधूको परस्पर वरमाला पहिनाकर विवाह-विधि सम्पन्न करते हैं। इससे भी इस ग्रंथकी लोकप्रियता दृष्टिगोचर होती है। तारण

समाजमें इन तीन ग्रंथोंको असीम श्रद्धा एवं आदर प्राप्त है।

लघु कलेवरके इन तीन ग्रंथोंमें आचार्य उमास्वामीके "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्ग:" का प्रति-पादन है, माला-रोहणमें सम्यक्दर्शनकी, पंडित पूजामें सम्यक्ज्ञान की वा कमल बत्तीसीमें सम्यक्चारित्रकी मुख्यतासे कथन है। आचार्य तारण तरणकी देव-गुरु-शास्त्रकी असीम भक्ति भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यके समान श्लोक, श्लोकमें दृष्टिगोचर होती है यथा—

देवं गुरुं शास्त्र गुणान नेत्वं, सिद्धं गुणं सोलाकारणेत्वं।
धर्मं गुणं दर्शन ज्ञान चरणं, मालाय गुथतं गुणसस्वरुपं ॥
(माला रो. ११)

भावार्थ:-मैं गुणमालामें देव-शास्त्र-गुरुके गुणोंको, सिद्धोंके गुणोंको, सोलह कारण भावानाओंको तथा सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मई धर्मको गूंथता हूँ।

कैसी अपूर्व भक्ति एवं श्रद्धा है। सम्यक्दर्शनकी महिमा और पात्रताका कैसा काव्यमय वर्णन है। भगवान महावीरके समवसरणमें महाराजा श्रेणिक पूछते हैं कि आत्माके गुणोंकी प्रभो! मालाको किसने देखा है और किसने नहीं देखा—तो भगवानकी वाणीमें उत्तर मिलता है-गौतम गणधर कहते हैं:—

जे इन्द्र धरणेन्द्र गन्धर्व यक्षं, नाना प्रकारं बहुवे अनंतं।
तेऽनंत प्रकारं बहु भेय कृत्वं, माला न दृष्टं कथितं जिनेंद्रै: ॥

जे शुद्ध दृष्टि सम्यक्त्व युक्तं, जिन उक्त सत्यं सु तत्त्वार्थ सार्धं।
आशा भय लोभ स्नेह त्यक्तं, ते माल दृष्टं हृदय कंठ ललितं ॥

हे श्रेणिक सुनो !

जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि ये जो इन्द्र, धरणेन्द्र गन्धर्व, यक्ष, आदि अनेक प्रकार के वैभव और शक्ति के धारी देव हैं और अनेक प्रकार के बेश और कौतुक के द्वारा अनंत प्रकार के कार्य कर रहे हैं इन्होंने भी सम्यक्त न होने के कारण आत्मगुणों की माला को नहीं देखा है, अपितु जो शुद्ध सम्यक्त के धारण करने वाले सम्यग्दृष्टि हैं और जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये तत्त्वों के अर्थ सहित अपने सत् स्वरुप को जानते हैं, -जिन्होंने आशा, लोभ, स्नेह और भय का त्याग कर निर्मोहीपना और निर्भयता प्राप्त की है वे ही अपने वक्षस्थल पर झूलती हुई मणीमाला के समान आत्मा के गुणोंको सदा देखते हैं। पण्डित पूजा ग्रंथ में सच्चे पंडित और देवपूजा का लक्षण कहते हैं :—

ॐ नमः विंदते जोगी, सिद्धं भवत् शाश्वतं।
पंडितो सोपि जानंते, देव पूजा विधीयते ॥ २ ॥

जो पंच परमेष्ठी के गुणों का अपनी आत्मा में अनुभव करते हैं और निरंतर उसी को स्मरण करते हैं वे अपने शाश्वत सिद्धपद को पाते हैं; उनको ही योगी और पंडित जानो तथा उन्हीं की पूजा सच्ची देवपूजा है। सिद्धों के गुणों का अथवा अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरुप का स्मरण ही सच्ची देवपूजा है।

आत्मा को शुद्ध करने के लिए इसी ग्रन्थ की गाथा १४ में कहते हैं :—

कषायं च अनंतानं, पुण्यपापप्रक्षालितं ।
प्रक्षालितं कर्म दुष्टं च, ज्ञानं स्नान पंडितः ॥ १४ ॥

पण्डित वही है जो चार अनंतानुबंधी कषाय, दुष्ट घातिया पाप कर्म एवं पुण्य-पापकी रुचि को छोड़कर निज अनंत ज्ञान के समुद्र में स्नान करता है ।

इसमें ज्ञान के महात्म्य को प्रगट किया है । आत्मशुद्धि अथवा कर्म की निर्जरा का उपाय कमल बत्तीसी ग्रन्थ में बताते हैं ।

चिदानन्द चिंतवनं, चेयन आनंद सहाव आनन्दं ।
कम्ममल पयडि खिपनं, ममल सहावेन अन्मोय संजुतं ॥१६ ॥

चित् और आनंदमई अपनी आत्मा का चिंतवन करने से चैतन्य रुप अतीन्द्रिय आनंद स्वभाव की प्राप्ति होती है, अपने शुद्ध स्वभाव में मगन होने से (स्थिर रुप निश्चय चारित्र से) कर्म प्रकृतियों का क्षय होता है ।

(कर्म क्षय का निश्चय से यही एक उपाय है और इसे संवर पूर्वक निर्जरा कहा है)

स्वभाव पर दृष्टि रखने से कर्म का क्षय होता है इस संबंध में ६ वीं गाथा में कहते हैं :—

कम्म सहावं खिपनं, उत्पन्न खिपिय दृष्टि सभ्भावं ।
चेयन रुप संजुतं, गलियं विलयंति कम्म बंधानं ॥ १६ ॥

अर्थात्–कर्म का स्वभाव तो उत्पन्न होना (उदय में आना) और क्षय हो जाना है, जो कर्म के उदय से संयुक्त न होकर अपने स्वभाव पर दृष्टि रखते हैं और चैतन्य स्वरुप में मगन होते हैं वे कर्मों के बंध को गलाकर विलीन कर देते हैं। इसी प्रकार शुद्ध निश्चय नय से कर्मक्षय का जो एक मात्र उपाय है। उसका सिद्धांतत: सुन्दर सरल भाषा में निरुपण किया है-इन तीनों छोटे ग्रन्थों में सच्चे मोक्षमार्ग का निश्चय एवं व्यवहार दोनों नयों से स्पष्ट सरल भाषा में उपमा अलंकार सहित वर्णन है। जैसे पंडित पूजा में स्नान के पश्चात् पंडित को कैसे वस्त्र पहिनना चाहिए—

वस्त्रं च धर्मसद्भावं, आभरणं रत्नत्रयं ।
मुद्रिका सम मुद्रस्य, मुकुटं ज्ञानमयं ध्रुवं ॥

पंडित सत्भाव रुपी वस्त्र, (धर्म स्वभाव) रत्नत्रय (सम्यक्-दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) के आभूषण, समताभाव रुपी अंगूठी और ध्रुवस्वभावी ज्ञान का मुकुट धारण करता है।

इसी प्रकार के ६६ श्लोक इस तारण त्रिवेणी में श्री जिन तारण तरण रचित हैं, जिनका सुन्दर अनुवाद ब्र० श्री शीतल–प्रसादजी ने किया है जो आपको इस ग्रन्थमें उपलब्ध है।

५. ज्ञानसमुच्चयसार

इस ग्रन्थ में आत्मज्ञान की श्रेष्ठता एवं स्वानुभूति का विशेष वर्णन है यथा—

अनेक श्रुत जानाति, व्रत तप क्रिया अनेकधा।
अनेक कष्ट कर्तव्यं, ज्ञान हीनो वृथा भवेत्॥

अर्थात्–अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता होकर व्रत, तप एवं क्रिया करते हुए अनेक कष्ट सहता है, परन्तु आत्मज्ञानके बिना सभी व्यर्थ है।

६. उपदेश शुद्धसार (गाथा ५८७-५८९)

इसमें बताया है कि तत्त्वरुचिका उपदेश ही उपदेशोंमें सारभूत है और मोक्षका कारण है यथा—

उवएसं जिन वयनं, जिन सहकारेन ज्ञानमय शुद्धं।
आनन्द परमानन्दं, परमप्पा विमल निव्वुए जंति॥
जिन उक्तं जिन वयनं, जिन सहकारेन उवएसनं तंपि।
ये जिन तारण रहियं, कम्मखय मुक्ति कारणं शुद्धं॥

अर्थः-जिनवाणीके उपदेशसे ज्ञानदर्शनमयी निज शुद्धात्माका अनुभव कर शुद्ध परमात्मपदको प्राप्त कर निर्वाणको जाते हैं। जिन वचनोंके सहकारसे मैं जिन तारण तरण परमानन्दकी प्राप्ति हेतु इस उपदेश शुद्धसार ग्रंथकी रचना करता हूँ क्योंकि जिनवाणी के उपदेशसे कर्मोंका क्षयहोकर मुक्ति (निर्वाण) की प्राप्ति होती है।

७. त्रिभंगीसार (श्लोक ७१)

इसमें तीन तीनके समूहकी बहुतसी बातें हैं।

जैसे–१–देव गुरु शास्त्र, २–दर्शन ज्ञान चारित्र,
३–क्षायिक शुद्ध ध्रुव, ४–कृत कारित अनुमत,
५–आशा भय स्नेह, ६–माया मोह ममता,
७–स्वातीत स्वधर्म आकाश, ८–नंद आनंद सहजानंदी।

किन तीनको त्यागनेसे और किन तीनके ग्रहण करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है इसका सुन्दर वर्णन है। इसकी विलक्षणता से लेखककी विद्वत्ता वा बुद्धिमानी झलकती है।

८. ममलपाहुड (गाथा ३२००)

इसे स्वयं लेखक ने भय खिपनिक विशेषण दिया है। इसका यह तात्पर्य है कि जिसे अपने शुद्ध स्वभावकी प्रतीति हो जाती है उसे ७ भय नहीं रहते और वह अनेक प्रकारसे अपने स्वरुपमें मगन होकर विचरता है। भिन्न राग-रागनियोंमें ८–१० से लेकर ३०-३५ गाथाओंके भजन इसमें हैं। इसमें निश्चयनयकी प्रधानतासे कथन है, आत्मस्वरुपकी झलक है। इस रचनासे प्रतीत होता है कि स्वामीजी संगीत विद्यामें निपुण थे और उसका उपयोग अध्यात्म साधनामें किया है जैसे:—

अन्यानी अन्यान मओ, मिथ्या सल्य संजुत्तिरना।
मुक्ति मुक्ति तूं चिंतवही, मूढ़ा मुक्ति न होइरिना॥

जनगन बावलो रे, न्यानी ममल सुभाई।
जनगन पागलो रे, न्यानी न्यान सुभाई॥
चलि चलहु न हो मुक्तिश्री तुम्ह न्यान सहाए॥

इस तरह ऋतु ऋतुकी भिन्न भिन्न रागनियों और लोकगीत की शैलीमें भजन हैं। श्री कानजीस्वामी इससे बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं और अपने प्रवचनोंमें इसकी महिमा गाई है।

९. चौबीस ठाणा (२४ पत्रक)

इसमें निश्चय नयको लेकर गोम्मटसारकी चर्चाका कुछ भाग है। एक स्थानमें ६६३३६ क्षुद्र भवोंका वर्णन यथार्थ गोम्मटसारके अनुसार है। जीवके भाव विशेषोंका २४ स्थानोंसे वर्णन है यथा—

अनिष्ट इष्ट नहु पिच्छं, इष्टं अन्मोय उवन्न सुइ रमणं।
इष्टं इष्टंति न्यानं, उत्पन्न अन्मोय सिद्धि समपत्तं॥२॥

अर्थः—जगतके पदार्थोंमें इष्ट-अनिष्टकी मान्यता छोड़कर ज्ञानी पुरुष अपनी स्वभाव परिणतिको इष्ट मानकर उसीमें रमण करते हैं उन्हें अपना ज्ञानस्वभाव ही इष्ट दिखता है और उसीमें आनन्द मानते हैं।

१० खातिका विशेष (५७ सूत्र गद्य - पद्य)

इसमें मुख्य रुपसे कर्म क्षयके उपायका वर्णन है यथा—

तद स्वभाव अर्क न दृष्यते तद नर्क॥ ११॥
उत्पन्न अनंत परणाम दृष्ट अर्क स्वभाव॥ ६॥

इन कारिकाओं का गूढ़ अर्थ है, जैसे कि जो अपने ज्ञान-स्वभाव को नहीं जानता देखता उसे कालांतर में नर्क प्राप्त होता है। और जो अपने अनंत ज्ञानस्वभाव रुपी सूर्यको देखता है उसके अनंत ज्ञानका परिणमन होता है और केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

११. सिद्धस्वभाव (२० सूत्र) गद्य

इसमें निश्चय प्रधान आत्मा की शुद्धि सम्बन्धी कथन है जो गूढ़ अर्थ को लिये हुए है यथा--

उत्पन्न प्रवेश उपजी, लहर खिपई, क्रोध खिपई,
देखी खिपई, सुनी खिपई, ऐसो सिद्ध स्वभाव॥ ५ ॥

अर्थ:-स्वभाव के आश्रय से आत्मानन्द में जो प्रवेश करते हैं, उन्हें उदय में आये कर्म प्रभावित नहीं करते अर्थात् बिना फल दिये झड़ जाते हैं। क्रोधादि भाव, चित्त की चंचलता, देखने सुनने, कहने की आकुलता चली जाती है। निर्विकल्प समाधि को प्राप्त ऐसा सम्यग्दृष्टि पुरुष सिद्ध के समान अपने शुद्ध स्वभाव का अनुभव करता है।

१२. शून्यस्वभाव (३४ सूत्र गद्य)

इसमें स्वचतुष्टय में पर की शून्यता का वर्णन है। मैं एक शुद्ध अभेद चैतन्य आत्मा मात्र हूं। कर्म, नोकर्म, पुण्य, पापादि का मेरे स्वक्षेत्र में प्रवेश नहीं है ऐसा सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने में पर

का अत्यन्ताभाव स्वीकार कर जगत से निस्पृह हो स्वरूप में स्थिर होकर आत्मानन्द का पान करता है। यथा—

"मुक्ति प्रमाण सो पात्र" ॥ ३४ ॥

जो अपने मुक्त स्वभाव को जानकर स्वतन्त्रता का अनुभव करते हैं वे ही मुक्ति के पात्र हैं।

१३. छद्मस्थवाणी (६७१ सूत्र गद्य)

मेरे विचारसे यह तारण स्वामीकी दैनंदिनी (डायरी) है। इसमें जब जैसे भाव आये उसका वर्णन है। कहीं कहीं समवसरण का वर्णन है जैसे-"साढ़े बारह करोड़ बाजे बजे"—तथा इसमें उन्होंने अपने जीवनके बारेमें भी कुछ संकेत दिये हैं-जैसे मिथ्या विली वर्ष ग्यारह, समय मिथ्या विली वर्ष दस, प्रकृति मिथ्या विली वर्ष नौ। माया विली वर्ष सात आदि इससे ज्ञात होता है कि समय समय पर उन्होंने अपने भावोंको इसमें लिखा है। एक बात और विचारणीय है कि जहाँ तारण स्वामीने पूर्वोक्त १२ ग्रन्थोंमें स्थल स्थल पर जिनोक्तं-जिनवर कथितं, कथितं जिनेन्द्रं आदिके द्वारा ऐसा दर्शाया है कि वह जिनवाणी है। वहां प्रस्तुत ग्रन्थका नाम स्वयं उन्होंने इसे छद्मस्थवाणी कहा है अर्थात् उनकी दशा छद्मस्थ थी और यह उनकी वाणी है न कि जिनेन्द्र की। अतः जहां उन्होंने १२ ग्रन्थोंको जिनवाणी निरुपित किया है वहां इसे छद्मस्थवाणी कहा है और इसकी विषय वस्तु भी ऐसी ही है। इसमें प्रमुख शिष्यों एवं उस समयके प्रमुख दर्शनार्थियोंके

नाम भी इसमें हैं। श्रद्धेय ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी वा श्रद्धेय कानजीस्वामीका ऐसा मत है कि श्री छद्मस्थवाणी तारणस्वामीकी कृति नहीं है। अपने मतके समर्थनमें इनका कथन है कि इस ग्रन्थकी विषय वस्तु शेष १२ ग्रन्थोंसे भिन्न है तथा यह सूत्र भी जिसमें उन्होंने अपने देहावसानकी अग्रिम सूचना दी है "जिन तारण तरण शरीर छूटो" इस ग्रन्थको उनके शिष्यों द्वारा उनके समाधिमरणके पश्चातका लिखा होनेका संकेत देता है।

इस सम्बन्धमें मेरा विनम्र मत है कि जैसा परंपरासे प्रचलित कथन है कि श्री तारणस्वामीको अवधिज्ञानका अंकुर उत्पन्न भया था इसलिये उन्हें अपनी आयुका पता था और उन्होंने उसे अपनी डायरीमें लिख दिया था। दूसरे यह कोई असम्भव बात भी नहीं है क्योंकि ऐसे बहुत उदाहरण हैं जबकि अपनी मृत्युका पूर्व अनुमान हो जाता है; अतः मात्र एक इसी कारणसे यह निर्णय उचित प्रतीत नहीं होता है कि छद्मस्थवाणी तारण स्वामीकी कृति नहीं है। विद्वान इस बात पर और भी विचारकर सकते हैं।

१४. नाम माला

इस ग्रन्थ में श्री गुरुदेव ने अपने शिष्यों का नाम ठाम आदि अपनी विशेष शैली में दिया है। "श्री निलय श्री अन्मोय जिन श्रेणि कलन मुक्ति गामिनो मह्वा उत्पन्न न्याय श्री अर्जिका पट तारण तरण ह्रिय"॥

इस तरह श्री जिन तारण तरण मण्डलाचार्य ने १४ ग्रन्थों

में भगवान महावीर की वाणी को गून्थकर उस सीमित यातायात के साधनों के युग में जन जन तक पहुंचाया। और लाखों मानवों को सच्चे मार्ग पर लगाया।

श्री जिन तारण स्वामी ने अपने १४ ग्रन्थों को विशेष ढंग से ५ मतों में विभाजित किया है। संसार में अनन्त मत है परन्तु आत्मकल्याण हेतु ५ मतें स्थापित की हैं :—

१–आचार मत में — श्रावकाचार

२–विचार मत में — मालारोहण, पंडित पूजा, कमल बत्तीसी
३–सार मत में-ज्ञान समुच्चय सार, उपदेश शुद्ध सार, त्रिभंगीसार
४–ममल मत में—ममल पाहुड़, चौबीस ठाणा
५–केवल मत में — छद्मस्थ वाणी, नाम माला, खातिका विशेष, सिद्ध स्वभाव, सुन्न स्वभाव।

इस प्रकार १४ ग्रन्थों के रुप में श्री जिन तारण तरण स्वामी अपनी धरोहर तारण समाज के अपने अनुयायियों को सौंप गये थे। तारण समाज ने इस धरोहर को अविकल रुप में संभालकर विगत ५०० वर्षों में रखा है। इसमें फेरफार कर इसे कोई अशुद्ध न कर दे इस कारण दूसरों से बचाकर रखा। किन्तु विगत ५० वर्षों से इस निधि को समय समय पर तारण स्वामीके कट्टर भक्तों ने बाहर निकाल कर इसकी टीका अनुवाद आदि कराकर इसे सर्व जन सुलभ बनाया। इस कार्य में सागर निवासी श्री मथुरा प्रसाद मानकलाल समैया का नाम उल्लेखनीय है। दानवीर सेठ मन्नू-

लाल जी आगासोद वालों ने विपुल धनराशि देकर, श्रद्धेय ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी द्वारा अनुवादित ग्रन्थों को प्रकाशित कराया। श्री मंत सेठ कुन्दनलाल हजारीलाल मंमदगढ़ (बासौदा) वालों ने भी दान देकर सभी १४ ग्रंथों को एक जिल्द में संग्रह कर "अध्यात्मवाणी" के नाम से प्रकाशित कराया है इसमें मूल के साथ भावार्थ भी दिया गया है। पं० जयकुमार जी सिंगौड़ी, कविरत्न अमृतलाल जी चंचल, पं० चंपालाल जी सोहागपुर ने भी अपने गद्य और पद्यानुवाद द्वारा इसमें सहयोग दिया है। श्रीमन्त सेठ भगवानदास शोभालाल जी सागर वालों ने श्री जिन तारण स्वामी के ग्रन्थों पर महान आध्यात्मिक संत श्री कानजी स्वामी के २५ प्रवचन कराकर इनकी महानता और उप-योगिता को जन जन के समक्ष प्रगट कराकर तारण स्वामीकी सच्ची महिमा प्रकाशित की है और अन्य साहित्य भी प्रकाशित कराया है। तारण स्वामीके ग्रंथों पर अपने प्रवचनों द्वारा त्याग-मूर्ति "विमलादेवी" बांदा वा पंडित केशरीचंद धवल भी तारण साहित्यका प्रचार कर रहे हैं। अन्य अनेक गुरुप्रेमी सज्जनोंके साथ साथ ब्रह्मचारी श्री गुलाबचंदजी महाराज निसईजी मल्हार-गढ़ विगत ५० वर्षोंसे सभी प्रकारसे गुरु महाराजकी वाणीकी समृद्धि, सुरक्षा एवं प्रचार कर रहे हैं-अभी ३ वर्ष पूर्व ७५ वर्षकी आयुमें श्री ज्ञान समुच्चयसारके पद्यानुवादके समय अथक परिश्रम किया है जो प्रशंसनीय है। अन्तमें मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि अध्यात्म दर्शनकी इस अमूल्य निधिके कर्ता श्री जिन तारण तरण स्वामीके इतिहासकी खोज की जाये और उनके साहित्य पर नये

सिरेसे सिद्धांत और अध्यात्मके विद्वानों द्वारा उस सूक्ष्म दृष्टि और व्यापक दृष्टिकोणको प्रकट किया जावे जो कि स्वामीजीकी सूक्ष्म अभिव्यक्ति एवं अन्तर्मग्न अतीन्द्रिय आनन्दसे भरपूर जंगलमें मंगल मनानेवाले योगीके जीवनदर्शनसे प्राप्त होता है। वैभवकी चकाचौंध और विलासिताके भोगोंमें जलते हुए मानवों को सच्चे सुख और शांतिका मार्ग बताने वाले महान आचार्य श्री जिन तारण तरणके १४ ग्रन्थरूपी महासागरकी गहन गहराई में गोता लगानेसे अमूल्य रत्नराशिके मिलनेकी पूरी पूरी संभावना है।

समैया सदन,
सागर
श्रावण शुक्ल पूर्णिमा
वि० सं० २०३४

गुरु महाराजका परम भक्त
कपूरचन्द समैया
"भायजी"

ॐ

(पंडित फूलचन्द्र जैन सिद्धान्तशास्त्री, वाराणसी)

—: उपोद्‌घात :—

श्री जिन तारण-तरण स्वामी बुन्देल खण्ड और मध्यप्रदेश की विभूति थे। जब चन्देरी नगरमें भट्टारक परम्पराका उदय हुआ, उनके उदय और धर्म प्रचारका वही समय है। वे प्रतिभाशाली, भगवान कुन्दकुन्द द्वारा रूप्रपित वीतराग शुद्ध मार्गका अनुसरण करनेवाले थे। अपनी दिव्य वाणी द्वारा व्यवहार—निश्चयस्वरुप वीतराग मोक्षमार्गका वे अपने जीवन के अंतिम क्षण तक प्रचार करते रहे। इसी तथ्यको सूचित करते हुए वे पण्डित पूजाके अन्तमें कहते हैं—

एतत् सम्यक्त्वपूज्यस्य, पूजा पूज्य समाचरेत।
मुक्तिश्रियं पथं शुद्धं व्यवहार निश्चय शाश्वतं ॥ ३२ ॥

इस गाथामें वे मुक्तिश्रीकी प्राप्तिके व्यवहार-निश्चयस्वरुप शाश्वत शुद्ध मोक्षमार्ग पर चलनेका उपदेश देते हुए कहते हैं कि सब प्रकारके मल-दोषोंसे रहित पूज्य सम्यग्दृष्टिके योग्य पूजा करनी चाहिए !

जो वर्तमानमें मुद्रित उक्त गाथा मिलती है उसे हमने थोड़ा परिवर्तन करके लिखा है, क्योंकि तीनों ठिकानेसार ग्रन्थोंके अवलोकनसे यह आभास मिलता है कि उत्तर कालमें भाषा और मूल विषयसे अपरिचित लेखकोंकी कृपासे मूल ग्रन्थोंमें भाषाकी

दृष्टिसे भारी परिवर्तन हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि वे ग्रन्थ अभी तक सुरक्षित बने रहे। भारी छानबीनके बाद भी इनकी रचनाओंकी प्राचीन प्रतियां हम उपलब्ध नहीं कर सके। अस्तु,

इसमें सन्देह नहीं कि स्व० ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजीने प्रत्येक ग्रंथका ही नहीं, प्रत्येक गाथाका शब्दानुवाद करके जैन समाजका असाधारण उपकार किया है। शिक्षा, धर्म, साहित्य, वर्तमानपत्र और समाज ऐसा कोई अंग नहीं जिसे उन्होंने अपने लेखन और प्रचारका अंग न बनाया हो। वे कर्मठ कार्यकर्ता थे। सोते-जागते उनके जीवनका प्रत्येक क्षण प्रत्येक अंगकी पूर्तिके लिये निश्चित था। श्री जिन तारण-तरण स्वामीको प्रकाशमें लाने का अधिकतर श्रेय भी उन्हींको है। वर्तमान कालीन साधारण मत-भेदको गौण करके देखा जाय तो उनका ही सर्वप्रथम ध्यान श्री तारण-तरण-स्वामीजी रचित इस अमूल्य सम्पत्तिकी ओर गया और उसके माने गये १४ ग्रन्थोंमेंसे ६ ग्रन्थोंका शब्दानुवाद करके उन्हें प्रकाशमें लाये। वे वर्तमानकालमें हमारे बीचमें नहीं हैं। पर उनकी पुनीत स्मृति चिरकाल तक बनी रहेगी इसमें सन्देह नहीं है।

(२) तीन ठिकाने सार ग्रन्थ-

स्वामीजीकी रचनाओंसे उनके जीवन पर कुछ प्रकाश पड़े इसके लिये तो उनकी कृतियोंका सूक्ष्म अध्ययन आवश्यक है। छद्मस्थवाणीमें जो कुछ गूढ़ भाषामें कहा गया है उसका ऊहापोह हम श्री ज्ञान समुच्चयसार की प्रस्तावनामें कर आये हैं।

किन्तु उनकी रचनाओंका इस दृष्टिसे अभी भी सम्यग् अध्ययन आवश्यक है।

जो तीन ठिकानेसार ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उनमें जो-जो सूचनाएं की गई हैं उन पर विस्तृत प्रकाश तो योग्य समय आने पर ही कर सकेंगे। तत्काल तीन बत्तीसीयोंके सम्बन्धमें जो सूचनाएं की गई हैं उनकी सांगोपांग चर्चा यहाँ हम कर देना चाहते हैं।

(१) हमें इस ग्रन्थकी एक प्रतिकी उपलब्धि श्रद्धेय ब्र० गुलाबचन्दजीके पाससे मल्हारगढ़ निसईजीसे हुई। यह गुटका ग्रन्थ है। इसकी लम्बाई लगभग १६ अंगुल और चौड़ाई १० अंगुल है। पत्र संख्या १३८ है। ठिकानेसार ७६ पत्रसे भी आगे है। ८० वें पत्रसे १०८ तक सूची तथा विशेष विवरण है। १०६ पत्रसे १३८ पत्र तक ठिकानेसार सम्बन्धी तथा दूसरे विषयोंका संकलन है। इसकी लिपि द्वि० भादों सुदी १४ शनिवार सन् १८६० को कुन्डावासी टीकारामने की है।

(२) दूसरा ठिकानेसार गंजबासौदामें प्राप्त हुआ। इसकी लम्बाई १६ अंगुल तथा चौड़ाई ६ अंगुल है। कुल पत्र संख्या ४२ है। इसकी लिपि जेठ सुदी ८ सम्वत् १६६६ में की गई है।

(३) तीसरा ठिकानेसारकी प्राप्ति खुरई (सागर) चैत्यालयसे हुई। इसकी लम्बाई लगभग १३ अंगुल, चौड़ाई ६ अंगुल और पत्र संख्या ६८ है। पत्र संख्या ८ में विवरण व सूची है। शेष

पत्रोंमें विशेष विषयोंका संकलन है। इन पर पत्र संख्या अंकित नहीं है। इसके लिपिबद्ध होनेकी वही तिथि सम्वत् है जो मल्हारगढ़ निसईके गुटिकाकी है। लेखक का नाम भी वही है।

इन तीनों ठिकानेसार ग्रन्थोंमें विषयका संकलन एक क्रमसे नहीं है। किन्तु खुरई चैत्यालय और मल्हारगढ़ निसईजीसे प्राप्त दोनों ठिकानेसार ग्रन्थोंकी लिपिकी तिथि और लिपिकार ये एक ही हैं। इससे इस बातका तो पता चलता है कि सम्भव है खुरई चैत्यालयकी प्रतिको देखकर मल्हारगढ़ निसईजी गुटिकाकी प्रति लिपि की गई है क्योंकि खुरई चैत्यालयका गुटिका कुछ प्राचीन लगता है। इतना अवश्य है कि विषयके संकलनमें लिखानेवाले की रुचिको ध्यानमें रखा गया है। जिस ठिकानेसारके आधारसे ये तीनों प्रतियाँ तैयार की गई हैं वह कहीं हैं या नहीं इसका अभी तक कहीं पता नहीं चल सका। ये तीनों प्रतियाँ किन्हीं प्राचीन प्रतियोंकी लिपि हैं, इसका लिपिकारने एक दोहा लिखकर उल्लेख भी किया है। दोहा इस प्रकार है —

जैसी प्रत देखी हमन, तैसी लई उतार।
हमको दोष न दीजिये, बुधजन लीजो सुधार ।

३. तीनों बत्तीसियोंके विषयमें

तीनों ठिकानेसार ग्रन्थोंमें तीनों बत्तीसियोंके विषयमें जो उल्लेख मिलते हैं उनकी चर्चा कर लेना चाहते हैं। मुद्रित बड़े गुटिकामें प्रथम बत्तीसी मालारोहण छपी है। इसके बाद पण्डित

पूजा और इसके बाद कमलबत्तीसी छपी है। मालारोहणका श्री जिन तारण-तरण स्वामी के अनुयायियोंमें विशेष स्थान है। विवाह की सम्पन्नता इसीके पाठसे की जाती है। इसकी सूचना गंजबासौदाकी प्रतिसे होती है। इसमें कहा गया है—

माला करेसं रजपुत्र व्याहण चले नृत्यरंज तिनिके समय मालारोहिणी उत्पन्न भई। पत्र सं. ३५।

इससे पता चलता है कि किसी राजपुत्रके विवाहके समय मालारोहिणी बत्तीसी लिखी गई थी।

किन्तु मल्हारगढ़ निसईजीकी प्रति पत्र सं. १२ में यह उल्लेख मिलता है—

खिमलासे पद्मकमलकी बेटी मैनसिरिमाला उत्पन्न भई। परवर मैडीसी चौधरी नाऊनपुरको। ३६।

साथ ही इसी गुटिकाके पत्र संख्या ११७ में यह उल्लेख मिलता है—

अस्थान खिमलासौ पद्म कमलजू कौ प्रसाद भयौ। सुहगंसि रमन फूलना पहली गाथा प्रसाद पद्मकमलकौ। आचरीकी गाथा में सुहगावती रुइया जिनकौ प्रसाद ॥११॥

किन्तु यह फूलनाओंके समयके निर्णय का प्रसंग है, इसलिये गंजबासौदा का उल्लेख विशेष प्रामाणिक लगता है, क्योंकि इसके विरुद्ध खुरई चैत्यालयकी प्रतिमें यह उल्लेख है—

अस्थान खिमलासौ पद्मकमलकौ प्रसाद भयौ सुहगंमि रमन फूलना पहिली गाथा प्रसाद पद्मकमलजूकौ आचरीकी गाथा मैं सुहगावति रुइया जिनकौ प्रसाद ॥ ११ ॥

लगभग इसी प्रकारका उल्लेख गंजबासौदाकी प्रतिमें भी देखनेको मिलता है—

स्थान खिमलासा पद्मकमल जू के निवति सुहिगम्य रमण फूलना उत्पन्न भयौ ।

खुरईके ठिकानेसारमें पांच मतियोंका निरूपण हुआ है। वे है—विचारमति, आचारमति, सारमति, ममलमति और केवल-मति । यथा-आचारमतिमें श्रावकाचार उत्पन्न भयौ । विचारमतसौं तिनई-बत्तीसी छांनवे माषंड जिने ॥९६॥ सारमतमें तीन सार कहिये १-न्यानसमुच्चयसार। २-त्रभंगीसार । ३ — उवसिधसार (उपदेशसार) उत्पन्न भए। ममलमतमै खिपनक १- ममलपाहुड ग्रन्थ। २-चौबीसजानौ । केवलमतिमें ग्रन्थ ५- छदूमस्तवानी १, नाममाला २, खातिकाविशेष ३, सिधसुभाव ४, सुनसुभाव ५।

इस उल्लेखसे पता चलता है कि तीनों बत्तीसियोंका विचार मतमें समावेश होता है। स्वयं जीवनमें कैसा चिन्तवन और अनुभव करनेसे यह जीव ज्ञानमार्गका अनुसरण कर अन्तमें मोक्ष का पात्र बनता है तथा निराकुल लक्षण स्वाश्रयी अनन्त सुखका पात्र बनता है। इन बत्तीसियोंमें खासकर ऐसे निरूपण पर ही विशेष बल दिया गया है। यहाँ इन पाँच मतोंमें मति और मत इन

दोनों शब्दोंका प्रयोग किया गया है। हमने जहाँ जैसा पाठ है वही रखा है। आम तौरसे ये पाँचों मत कहे जाते हैं, मति नहीं। फिर भी हमने उक्त ठिकानेसारके पाठकी सुरक्षाकी दृष्टिसे उक्त पाठमें परिवर्तन नहीं किया है। मूल पाठ उद्धृत कर दिया है।

प्रसंगसे यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि तीनों ठिकानेसार ग्रन्थोंमें मूल ग्रन्थोंके परिचयमें तो थोड़ा बहुत भेद है ही। शेष विषयोंके संकलनमें काफी फरक है। इससे ऐसा भी लगता है ये तीनों प्रतियोंके मूल आधारभूत मूल ठिकाने-सार ग्रन्थ भी अनेक रहे हैं। तथा अन्य कई विषयोंका समावेश भी बादमें कर दिया गया होना चाहिये। इस समय सब अंध-कारमें हैं। स्वयं उनके अनुयायियों द्वारा इस विषयमें हमें उपेक्षा होती हुई जान पड़ती है। आदरणीय श्रीमन्त सेठ श्रीभगवानदास शोभालालजी तथा उनके बड़े पुत्र भी श्रीमन्त सेठ श्री डालचंद जी ऐसे महानुभाव हैं, जो कुछ हो रहा है वह उनके प्रयत्न-विशेषसे ही हो रहा है। अस्तु—

आगे तीनों बत्तीसियोंमें क्या विषय है इस पर ऊहापोह करेंगे। उनमें प्रथम मालारोहण पर विचार करते हैं—

मालारोहण

जैसा कि हम पहले लिख आये हैं, स्वामीजीने इसकी रचना एक विवाहके अवसर पर की थी। यह बात तो समझमें इसलिये आती है कि उस प्रसंग पर समाजके अनेक प्रतिष्ठित

और अप्रतिष्ठित स्त्री-पुरुष सम्मिलित होते हैं अतएव स्वामीने अपने अध्यात्म-प्रचारका सबसे अधिक उपयुक्त समय यही समझा होगा। यह शुद्ध अध्यात्मकी प्ररूपणा करनेवाला ग्रन्थ है। प्रारम्भ में मंगलाचरणके बाद आत्माके विशुद्ध गुणोंके रूपमें मालाके इस ग्रंथकी रचना हुई। भले ही इसमें ३२गाथाएँ हों पर सभी गाथाएँ अध्यात्मके रससे भरपूर हैं।

भाषाकी दृष्टिसे जिसरूपमें यह उपलब्ध होता है, ठीक उसी रूपमें स्वामीजीने इसकी रचना न की होगी। लिखानेवालों और लेखकोंकीकृपासे इसका यह रूप बन गया है। वास्तवमें स्वामीजी के ग्रंथोंपर पर्याप्त श्रम होनेकी आवश्यकता है। इसकी प्रथम गाथा को ही लीजिये—

उंवकारं वेदंति सुद्धात्म तत्त्वं प्रनमामि नित्यं तत्त्वार्थसार्थं।
न्यानंमयो सम्यक्दर्श नित्यं संमिवत चरणं चैतन्यरुपं ॥ १ ॥

लगभग इस रूपमें स्वामीजीने इसकी रचना की होगी—

ॐकार वेदंति शुद्धात्मतत्त्वं, प्रणमामि नित्यं तत्त्वार्थसार्थं ।
ज्ञानमयं सम्यक्दर्श नित्यं, सम्यक्त्वचरणं चैतन्यरुपं ॥

अस्तु, अनुपम ग्रन्थ है। इस प्रथम गाथामें ओंकार स्वरूप पंचपरमेष्ठीको द्रव्य-भाव नमस्कार किया गया है, जो पंचपरमेष्ठी शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हुए या उसकी स्वानुभूतिसे संपन्न हैं, सभी पदार्थों में वे सारभूत हैं, निरन्तर ज्ञानमय हैं, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रके साथ जो आत्मस्वरूपकोप्राप्त हुए हैं ॥ १ ॥ दूसरी गाथामें अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीरको

द्रव्य-भाव नमस्कार किया गया है, जिनके अनन्त चतुष्टय पूर्णरूपसे व्यक्त हो गये हैं। साथ ही मैं सभी केवलियों और अनन्त सिद्धों को नमस्कार कर तुम्हारे प्रबोधके लिये गुणमालाका कथन करूँगा ॥ २ ॥ आगे शुद्ध सम्यग्दृष्टि कैसा होता है इसका निरूपण करते हुए लिखा है-जिसका आत्मा शरीरप्रमाण है, जो भावसे निरंजन है, जिसका लक्ष्य निरंतर चेतन आत्मा पर बना रहता है, भावसे जो निरंतर ज्ञानस्वरूप हैं, यथार्थ वीर्यके धारी वे शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं ॥ ३ ॥ जो मनुष्य संसारको दुःखरूप समझकर उससे विरक्त हैं वे शुद्ध समयसार हैं ऐसा जिनदेवने कहा हैं। जो मिथ्यात्व, आठ मद और रागादिभावों आत्मभावको दूर कर चुके हैं, सभी तत्त्वार्थोंमें सारभूत वे शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं ॥ ४ ॥ आत्माके शुद्ध स्वरूपको बतलाते हुए स्वामीजी कहते हैं कि—जो तीन शल्योंसे रहित है, जिसने अपने चित्तका निरोध किया है, जो निरन्तर अपने हृदयमें जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित वाणीकी भावना करता रहता है और जो झूठे देव, गुरू और धर्मसे अत्यन्त दूर है ऐसा सभी तत्त्वार्थोंमें सारभूत आत्माका शुद्ध स्वरूप है ॥ ५ ॥ जो कोई मनुष्य मुक्ति सुखके साथ शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारी है, जो पुण्य-पाप और रागादिभावोंसे विरक्त है, जो निरन्तर इस भावना से सम्पन्न है कि मेरा आत्मा स्वभावसे ध्रुव शुद्ध और ज्ञान-दर्शन स्वभाववाला है ॥ ६ ॥ केवलज्ञान सदा काल समस्त पदार्थोंको जाननेवाला है और शुद्धप्रकाश स्वरूप है, अभेददृष्टिसे शुद्ध आत्म-

तत्त्व है । वह आत्मतत्व सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चारित्र और अनन्त सुखका भोक्ता है ऐसा सभी तत्वार्थोंमें सारभूत शुद्ध आत्माकी तुम निरन्तर भावना करो ॥ ७ ॥

शुद्ध सम्यग्दर्शन मेरे हृदयमें अर्थात् आत्मामें सदा प्रकाशित रहो । उसकी गुणमाला गूँथनेमें वीर्यसमर्थ देवाधिक अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरू, वीतरागवाणी, सिद्ध परमेष्टी, अहिंसा धर्म और उत्तमक्षमा यह गुण उसके मोती या मणि हैं ॥८॥ यथार्थ तत्वों का तुम निरन्तर मनन करो, जिससे २५ मलदोषोंसे रहित शुद्ध सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होवे । शुद्ध ज्ञान, शुद्ध चारित्र और वीर्यगुण युक्त शुद्धआत्मतत्वको मैं द्रव्य-भाव नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥ देवोंका देव श्रुतज्ञान स्वरूप आत्मतत्व है जो सात तत्व, छह द्रव्य, नव पदार्थ, पांचअस्तिकाय, सामान्य-विशेषगुण, चेतन आत्माके वर्णनसे युक्त है तथा विश्वको प्रकाशित करनेवाला और तत्त्वोंमें सारभूत तत्व आत्माको अनुभवने वाला है ॥१० ॥ देव, गुरू, शास्त्र, सिद्ध, सोलहकारण, धर्म, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र के गुणोंसे यह माला गूंथी गई हैं जो सदा प्रशस्त है ॥ ११ ॥

ग्यारह प्रतिमा, सात तत्व, चार निक्षेप, बारह व्रत, सात शील, बारह तप, चार दान, शुद्ध सम्यक्त्व-ज्ञान-चारित्र; मलरहित शुद्ध सम्यग्दर्शन, आठ मूलगुण इनका यथा सम्भव विशुद्ध रीतसे पालन करते हैं और जो अत्यन्त शुद्ध ज्ञानके धारी हैं वे शुद्ध आत्मस्वरूपके अनुभवने वाले शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं ॥ १२-१३ ॥

सम्यग्ज्ञानी जीव शंकादि आठ दोष और आठ भेदोंके अहंकारसे मुक्त होता है। उसके तीन मूढ़ता, मिथ्यात्व और मायाशल्य नहीं देखी जाती इससे वह निदानसे रहित होता है ऐसा भी समझ लेना चाहिये। अज्ञान, छह अनायतन, पच्चीस मलका वह त्यागी होता है। वह सदोष कर्मका भी त्यागी होता है ॥ १४ ॥

रत्नत्रयधारी मुनि शुद्धआत्मतत्व शुद्ध प्रकाश का धारी होता है, आकाशके समान निरावरण विश्वस्वरूप का धारी होता है, यथार्थ तत्वार्थकी बहुत भक्तिसे युक्त होता है ॥ १५ ॥

जो धर्ममें लीन हैं, आत्मगुणोंका चिन्तवन करते हैं; वे समस्त दुखोंसे मुक्त शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं। उसीसे आत्मतत्वका पोषण होता है वे ज्ञानस्वरूप हुए हैं तथा क्षणमात्रमें मोक्षको प्राप्त करेंगे ॥ १६ ॥ जो शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारी शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं तथा जिनके गलेमें अर्थात् कण्ठमें आत्मगुणोंकी माला झूल रही है और जो सत्यार्थस्वरूप आत्मतत्वकी भावना करते हैं वे संसारसे मुक्त होकर निराकुल सुख और अनन्त वीर्यके धारी सिद्ध होते हैं ॥ १७ ॥ ज्ञानगुणकी माला अत्यन्त संक्षेप है उसमें हे आत्मन् तेरे अनन्त गुण गूँथे गये हैं। वह प्रशस्त रत्नत्रयसे अलंकृत है। इस प्रकार श्री जिनेन्द्रदेवने यथार्थ तत्त्वका निरूपण किया ॥ १८ ॥ श्री वीरनाथको देखकर श्रेणिक राजा, धरणेन्द्र, इन्द्र, गन्धर्व, यक्ष, राजाओंका समूह तथा विद्याधर ज्ञानमय सुशोभित मालाकी प्रार्थना करते हैं ॥ १९ ॥ अनेकविध अनन्त रत्नोंसे क्या प्रयोजन अनेक प्रकारके धनसे भी क्या प्रयोजन, राज्यका त्याग कर यदि

वनवास लिया तो भी क्या लाभ हुआ, अनेक प्रकार तप तपा तो उससे भी क्या कार्य साधा ॥ २० ॥ श्री वीर भगवान श्रेणिक राजा से शुद्ध मन-वचन काय मालाके गुणोंको प्राप्त करनेके लिये हमारे कथनको सुनो ! यदि तुमने गुणमाला नहीं देखी तो इन रत्नोंसे क्या प्रयोजन, इस धनसे भी क्या लाभ, यदि राजा हुए तो क्या हुए यदि तुमने तप तपा तो भी वह किस कामका ॥ २१ ॥ अर्थसे क्या प्रयोजन ? उससे आत्माका क्या कार्य सधा ? बड़े भारी राज्य से क्या प्रयोजन ? कामदेवके समान रूप मिला तो वह किस कामका ? सम्यग्दर्शनके विना तप तपनेसे क्या सधा ? ॥ २२ ॥

जिनेन्द्रदेव कहा कि यदि गुणमालाका अनुभव नहीं किया तो नाना प्रकारके इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व, यक्ष आदि पदोंसे क्या लाभ ॥ २३ ॥ समस्त तत्त्वार्थोंमें सार्थक जो निश्चय सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध सम्यग्दृष्टि है और जो आशा, भय, लोभ और स्नेहसे रहितहैं, उनके हृदयमें और कण्ठमें ही गुणमाला सुशोभित होती है ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ २४ ॥ नाना प्रकारकी समृद्धिसे युक्त तथा निश्चय सम्यग्दृष्टि शुद्ध दृष्टि हैं उन्होंने ही हृदय और कण्ठमें सुशोभित गुणमालाको जाना है- ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥२५॥ जो मिथ्यात्व, लज्जा, भय और तीन गारवोंसे विरक्त होकर शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं उनके हृदय और कण्ठमें गुणमाला सुशोभित होती है। वास्तवमें वे ही मुक्तिगामी हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ २६ ॥ जो शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे सम्पन्न हैं और मिथ्यात्व, रागादि दोष और असत्यका त्याग कर चुके हैं उन्हींके हृदयमें-

गलेमें गुणमाला सुशोभित होती है। वास्तवमें वे सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व आदि कर्मोंसे रहित हैं॥ २७॥ जो पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानसे युक्त हैं तथा जिन्होंने रौद्र और आर्त्तध्यानसे रहित होकर आठ मद-मानका त्याग किया है उन्हींके हृदय और कण्ठमें गुणमाला सुशोभित होती है ॥ २८ ॥

वेदक भाव है, उपशमभाव और क्षायिकभावसे शुद्ध जिन-देवने जो मार्ग कहा है उस पर चलनेवाले तथा तीनों प्रकारके मिथ्यात्व, मलदोष और रागसे मुक्त हैं उन्हींके हृदय और कण्ठमें सुशोभित-माला देखी जाती है ॥ २९ ॥ जो चेतना तत्त्वको चेतते हैं, अचेतन विनाशीक है और असत्य है, उन्होंने उसका त्याग किया है, जिन्हें जिनेन्द्रदेव कथित सार्थक तत्त्वोंका प्रकाश मिला है उन्हींके हृदय और कण्ठसे माला स्वयं अनुभूत होती है ॥ ३० ॥ जिन्हें प्रशस्त रूप शुद्ध-बुद्ध गुण उपलब्ध हुए हैं तथा जिन्हें धर्मका प्रकाश हुआ है वे ही मोक्षमें प्रवेश करते हैं तथा उनके हृदय और कण्ठमें माला निरन्तर डोलती रहती है ॥ ३१ ॥ जिन्होंने सिद्ध होकर अनन्त मुक्तिमें प्रवेश किया है, स्वरूपभूत शुद्ध अनन्त गुणोंसे गूंथी हुई माला उन्हें प्राप्त होती है जो कोई भव्यात्मा शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारी हैं वे मोक्षको प्राप्त होते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ ३२ ॥

— : उपसंहार : —

यह गुणमालाका भावानुवाद है। इसमें उन सभी अवस्थाओं और गुणोंका निरूपण हुआ है जिन गुणोंरूपी फूलोंसे यह माला पिरोई गई है। इसमें बहुलतासे माला शब्दका प्रयोग हुआ है। तीन गाथायें ऐसी हैं जिनमें गुणमाला शब्द आया है। स्वामीजी की दृष्टिसे यह इसका पूरा नाम है। इसमें सर्वत्र 'हृदय केन्द्र कलितं' शब्द आया है। कण्ठ और गलेमें अन्तर है। कण्ठ गलेका भीतरी अवयव है और गला बाहिरी। इससे स्वामीजीके समग्र जीवन पर प्रकाश पड़ता है। मालूम पड़ता है कि वे हृदय द्वारा स्वभावभूत अनन्त गुणोंसे सुशोभित आत्मा निरन्तर चिंत-वन करते रहते थे और कण्ठ द्वारा उनका गुण-गान करते रहते थे। उनके द्वारा रचित शास्त्र उन्हीं दोनोंके उच्छ्वासमात्र हैं। यह उनका २४ घण्टोंका प्राकृतिक जीवन बन गया है। उन्हें इसकी चिन्ता नहीं कि कौन उनका समर्थन करता है और कौन उनका विरोध करता है। उन्होंने बाह्यमें विधि-निषेधसे अपनेको परे बना लिया था। इतना अवश्य है कि जो उनसे अनुप्राणित होते थे उन्हें उनकी बाह्य परिणतिके उपदेशके साथ ही अध्यात्मका घूँट पिलाते थे। जो जिसका अनुषंगी है उसका उपदेश वे अवश्य देते थे। वे किसी वेशके पुजारी नहीं थे, आत्मधर्मके पुजारी थे। घर-बार छोड़ना और बात है, अध्यात्मका पुजारी होना और बात है।

गुणमाला बत्तीसीके अन्तमें ग्रन्थ समाप्ति वचन आया है। यथा- ॥ इति श्री मालारोहण जी नाम ग्रन्थ जिन तारण तरण विरचित समुत्पन्नता ॥

लोकमें इसे मालारोहण भी कहते हैं। स्वामीजीने इसे "गुणमाला" कहा है। मेरे ख्यालसे यह ग्रन्थका उपयुक्त नाम है स्वामीजीने इसी नामका उल्लेख किया है। अस्तु।

श्री पंडित पूजा

❀ उपोद्घात ❀

यह स्वामीजी द्वारा रचित दूसरी बत्तीसी है। खुरई चैत्यालयके ठिकानेसारेमें ग्रन्थका परिचय मात्र दिया है लिखा है—

पंडित पूजाकी विधि-पंडित पूजा की पहचत्तरि पुंजेति— रूपणं। ओंमकारमें पंच परमेष्टी देव की पूजा पंच अषिर-संयुक्ता गाथा चारलौ ४ श्रुतपूजा पंचई गाथा ५ छठी गाथा गुरूपूजा वारा पुंज पूरे सातइ गाथा संभिक्त विजं सिद्धकौ जंत्र त्रिलोकं लोकीनं धुवं अरिहंतकौ जंत्र रत्नं त्रयं मयं सुधं ये तीन जंत्र साधु के गाथा ७ आठई गाथा मैं धर्म सुधं च वेदंते आचार्ज उपायदेवकौ जंत्रु।

मल्हारगढ़ निसईजीकी प्रतिमें पण्डित पूजा बत्तीसीके विषयमें लिखा है-ॐकारमें पंच परमेष्टीदेवकी पूजा पंच अषिर संजुक्त ॥

गाथा चार लौ ॥ ४ ॥ श्रुतपूजा ॥ पंचैइ गाथा ॥ ५ ॥ छटि गाथा गुरूपूजा ॥ बारह पुंज पूरे ॥ सातइ गाथा ॥ संभिक्त वीर्जु ॥ सिद्धको जंत्रु ॥ सातइ गाथा ॥ त्रिलोक लोकीतं ध्रुवं ॥ अरहंतको जंत्रु ॥ सातई गाथा मैं रत्नत्रयं मये सुधं ॥ ये तीन जंत्रु साधुके गाथा सातई ॥ ७ ॥ आठई गाथामैं धर्म सुखं च वंदंते ॥ आचार्य उपायदेवको जंत्रु ॥ पूजा जंत्रुकी विधि ।

पंडित पूजाके ठिकाने गंज बासौदा—चार गाथा देवकी पूजा पूजा पंच परमेष्ठी संयुक्तं । ४ । पांचई गाथामैं श्रुतपूजा चार-नियोग संयुक्तं । ५ । छटई गाथामैं गुरूकी पूजा तीन रत्नसंयुक्तं । ६ । बारह पुंज संयुक्तं । सातई गाथामें सम्यक्त वीर्य सिद्धिकौ जंत्र अष्टगुण संयुक्तं सिद्धके । १ । त्रिलोकं लोकन्त ध्रुवं । अर्हन्तको जंत्र येक । १ । सोलहि कारण संयुक्तं । १६ । रत्नत्रियमयं सुधं साधुके तीनि जंत्र दर्शणके अंग । ८ । न्याणके अंग । ८ । तेरहि विधि चारित्र । साधु जंत्र संयुक्तं । सातई गाथामैं धर्म शुद्धः व्यंवन्दतेः उपादेव आचार्यकौ जंत्र दसविधो धर्म संयुक्तं । गाथा अठाईमैं ॥ ८ ॥ नमई गाथामें स्नांपतिकी जुक्ति कही चार विधको जल नौमैं प्रवाहुजल कहौ, ध्यानसेमैं त्रौवरजल कहौ ॥ गाथा दसई मैं न्याणंभयंजलं शुद्धं । व्यापकि जल कहौ । गाथा ग्यारहिमैं सम्यक्तं-जलं-शुद्धं कूप जल कहौ । बारहि गाथामैं ॥ १२ ॥ आत्म-सौधन दृष्टिसोधन तेरही गाथामैं प्रक्षालकी जुक्ति कहीं पन्द्रवीं गाथामैं वस्तरिकी जुक्ति कहीं । पाग पिछौरी धोती अंदोगी वस्त्र-भेद ॥ ४ ॥ सोरही गाथामैं आभरणकी जुक्ति कही । चारित्र

संयुक्त मुद्रकी जुक्ति कही। सीलि सम्यक् सप्राणि मुद्रका मुकटं। पंश्च न्याण सिरिमुकटि सोहै सतरहीअठारही गाथामै दृष्टि शुद्धनः दृष्टि निपजै तो मिथ्यादृष्टी चः। त्यक्तयं। उनीसवीं गाथामै बीस वीं गाथामै पच्चीस मलकौ भरतिय कह्यो॥ २५॥ इकईस गाथामै वेदिकाकी जुक्ति कहीं। बाइसवीं गाथामै उचारणकी जुक्ति कही। ऊर्ध्वगुणके शुद्धिगुण तेईसवीं गाथामै अविकास। चौबीसइ गाथामै आकार पूजाका स्थूल पूजा कुगुरूके लक्षण कहियौ पच्चीसई गाथामै अविकास कहियो छब्बीसई गाथामै। इन्द्रपति इन्द्रकी जुक्ति कही सताईसवीं गाथामै दाताकी जुक्ति कही। अट्ठाईस गाथामै अवकास उनतीसई गाथामै चार संगकी विधि कही। तीसई गाथामै सताई तत्त्वकी विधि कही। तत्त्व आराधन भेद-चारा सत्वई तत्त्व दर्पणके निर्णय। नव पदार्थ न्याणके निर्णय षट्द्रव्य चारित्रके निर्णय। पंचास्तिकाय तपके निर्णय। दर्शणदृष्टि न्यांणाकर्प। तप हृदया चारित्र कमल गाथा॥ ३०॥ इकतीसई गाथामें मिथ्यात्वक्त कुन्याण त्यक्त। बत्तीसई गाथामै औकास ॥ ३२॥ इति श्री पण्डित पूजा सम्पूर्ण॥ ६॥

ये तीनों ठिकानेसार ग्रन्थोंमें पंडित पूजाके विषयके जो कुछ लिखा उसे अविकल यहाँ दिया गया है। इसकी उत्पत्तिके विषय में गंजबासौदा की प्रतिमें लिखा है-पंडित पूजाकौ समय उत्पन्न भयौ॥ अनुवृत समार्थ षिपकि विशेष्य॥ न्यांण प्रयोजनि॥ अहार होकित जऔ। मोहि किति उपज्जै हो कब बुलायो हो किनि जायौ। मोहि किनि उपजै हो किनि बुलायौ॥ अवरिकी जाई।

अवरिकी जाई उपजै अवरकी बुलाय। इति अनुवृत्ति की परीक्षा तारण तरण कही ॥

यह तीनों ठिकानेसार ग्रन्थोंमें पंडित पूजा बत्तीसीके विषयमें जो कुछ लिखा गया है उसका अविकल उल्लेख है। इस पर तत्काल कुछ टीका-टिप्पणी नहीं करेंगे। आगे पण्डित पूजा भावानुवाद दे रहे हैं जिससे उसके अध्यात्मस्वरूपको समझनेमें पाठकोंको सुगमता होगी।

●

पंडित पूजाका भावानुवाद

ओंकार मंत्र ऊर्ध्वलोकके सबसे ऊपर ओंकारके बिन्दु समान शाश्वत सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं जो निरन्तर ज्ञानभावके साथ ध्रुव हैं ॥ १ ॥ निश्चयसे वे शुद्ध आत्मतत्त्वको जानते हुए वर्तते हैं। मेरा आत्मा स्वभाव शुद्ध है ध्रुव है ऐसा अनुभवना निश्चय नमस्कार है ॥ २ ॥ ओंकार स्वरूप आत्माको योगीजन अनुभवते हैं। जो विवेकशालिनी बुद्धिवाले पण्डित हैं वे ही उसे अनुभवते हैं। उसके द्वारा ही देव पूजा पूजा है ॥ ३ ॥ ज्ञानके अस्तित्व रूप ह्रींकार है और ओंकार भी ज्ञानस्वरूप है। वह अनुभवका विषय है। ऐसा अरहन्त सर्वज्ञदेवने कहा है। यह अचक्षुदर्शन पूर्वक मतिज्ञान-श्रुतज्ञानका विषय है ॥ ४ ॥ जिसके सम्पूर्णरूपसे मतिज्ञान-श्रुतज्ञान होता है वह नियमसे पांचवें ज्ञान केवलज्ञानमें स्थित होता है। इसे पण्डितजन भले प्रकार जानते हैं

वे ज्ञानस्वरूप शास्त्र को नियमसे पूजते हैं ॥ ५ ॥ ओंकार और श्रीकारका अनुभवन ही ध्रुव ज्ञानस्वरूप है। देव-शास्त्र और गुरू, सम्यक्चारित्र और शाश्वत सिद्ध परमेष्ठी हैं ॥ ६ ॥ शुद्ध वीर्य ध्रुव तीन लोकके ज्ञाता सिद्ध परमेष्टी की उत्पत्ति का मूल है। जो सिद्ध परमेष्टी शुद्ध रत्नत्रयस्वरूप हैं। पण्डितजन ऐसे गुणवाले सिद्धोंकी सच्ची पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ जो सच्चे देव, गुरू और शास्त्र की वन्दना करते हैं वे ही शुद्ध धर्मको अनुभवते हैं। वे ही रत्नत्रयके धारी हैं। यही उनका शुद्ध जलसे स्नान है ॥ ८ ॥ चेतना लक्षण धर्म है, बुधजन सदा अनुभवते हैं। ध्यान ही शुद्ध जल है। ऐसे जलसे ज्ञानरूप स्नान करते हैं ॥ ९ ॥ पंडितजन शुद्ध आत्मतत्त्व को अनुभवते हैं, तीनलोक तालाब स्वरूप है, ज्ञानसे वह भरा हुआ है। ऐसा ज्ञानमय शुद्ध जल है। ज्ञानभावसे परिणत पण्डितोंका यही स्नान है ॥ १० ॥ सम्यग्दर्शन शुद्ध जल है, आत्मरूपी तालाब उससे पूरी तरह भरा हुआ है। ऐसे जलमें स्नान करके गणधरदेव उसीका पान करते हैं। ज्ञानरूपी तालाब अनन्त और ध्रुव है ॥ ११ ॥ आत्मा शुद्ध चेतनास्वरूप है, वह शुद्ध सम्यग्दर्शन के समान ध्रुव है। ऐसे शुद्ध भावमें स्थिर होकर पण्डितजन उस ज्ञानभावरूप स्नान करते हैं ॥ १२ ॥ तीन प्रकारका मिथ्यात्व, तीन शल्य, कुज्ञान और राग-द्वेषरूप होना यह सब अशुद्ध भावना हैं ॥ १३ ॥ ऐसी भावनावालेने अनन्तानुबन्धी चार कषायोंका पालन किया, पुण्य-पाप भावका पालन किया तथा दुष्ट आठ कर्मों का पालन किया। किन्तु इसके विपरीत पंडितजन ज्ञानभावरूप

स्नान करते हैं ॥ १४ ॥ अशुद्ध भावनावालेने चपल मनको पोषा, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मको पोषा। किन्तु पण्डितजन कैसे वस्त्रोंका परिधान करते हैं। उनके आभरण और अलंकार कैसे होते हैं ॥ १५ ॥ धर्मका होना ही उनके वस्त्र हैं रत्नत्रय ही आभरण हैं, समभावसे मुद्रित होना मुद्रिका है और ध्रुव ज्ञानमय मुकुट है ॥ १६ ॥

शुद्ध दृष्टिका अनुभव कार्यकारी है, मिथ्यादृष्टि और असत्यसे दूर रहना चाहिए। अचेतन पदार्थोंमें इष्टानिष्ट बुद्धि न करें ॥१७॥ शुद्ध स्वरूपका अनुभव करना चाहिए, वही ध्रुव और शुद्ध सम्यग्दर्शन है, वह पूर्ण ज्ञानमय है इस प्रकार बुद्धिमान जनोंकी सदा निर्मल बुद्धि होती है ॥ १८॥ लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता और पाखण्ड मूढ़तासे सदा दूर रहे। अज्ञान, शरीर आदि आठ मद और शंकादि आठ दोषोंका सेवन न करें ॥ १९ ॥ शुद्ध और प्रयोजनीय आत्मपद ही अनुभवने योग्य है: शंकादि मलोंसे रहित सम्यग्दर्शन ही अनुभवने योग्य है। ज्ञानमय आत्मा शुद्ध सम्यग्दर्शन है। बुद्धिमान जनोंकी दृष्टिमें ऐसा व्यक्ति ही पंडित है ॥ २० ॥ जो आत्माको सदा रागादि परिग्रहसे रहित और तीनलोकमें एक शुद्ध आत्माको अनुभवते हैं ऐसा अनुभव करनेवाले जो पंडित हैं वे अनुभवियोंमें अग्रस्थानीय हैं ॥ २१ ॥ केवल पंच परमेष्ठीयोंकी ही स्तुतिकरनी चाहिए तथा शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनी चाहिए। जो लोकपूज्य पंच परमेष्ठी हैं, पंडित जन उन्हींको आराध्य मानते हैं। ऐसे पण्डितोंने ही जिन समयकी पूजा की ॥ २२ ॥ जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित आगमकी जिसने पूजा की

वह पण्डित सदा पूजित होता है । उसीने शुद्ध आत्माकी पूजा की-अनुभव किया, क्योंकि वही मोक्ष प्राप्तिका अपूर्व साधन है ॥ २३ ॥ अपूज्य, अदेव, अज्ञान, तीन मूढ़ता और अगुरुको पूजना मिथ्यात्व है वह सकल जन जानते हैं ऐसी पूजा अनन्त संसारका कारण है ॥ २४ ॥ शुद्ध तत्त्वका प्रकाशन ही पूजा है ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है । पण्डितकी वन्दना पूजा है ऐसा पण्डित नियमसे मोक्ष जाता है इसमें संशय नहीं है ॥२५॥ जिसके शुद्धा-त्माकी शुद्ध भावनाहै, वही परिपूर्ण शुद्धआत्माहै,वही शुद्ध अर्थरूप शुद्धसमय है । उसीने शुद्धआत्मा जाना अनुभवा ॥२६॥जो समीचीन दाता है,जिसका शुद्धहृदयसे दिया गया दान है, शुद्धभावना सहित पूजा है तथा जिसके हृदयमें शुद्ध सम्यग्दर्शन है उसीको शुद्ध आत्माकी भावना है ॥ २७ ॥ जो कार्यकारी ज्ञानमय और ध्रुव सम्यग्दर्शनको अनुभवता है, आराध्य शुद्ध आत्मतत्त्वकी आरा-धना करता है, क्योंकि ऐसी वन्दना करने योग्य है ॥ २८ ॥ चार संघ, शुद्ध आत्मा और शुद्ध समयकी भावना करता है उसे जिनेन्द्रदेवने प्रयोजनीय कहा है ॥ २९ ॥ प्रयोजनीय सात तत्त्व, छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय तथा ध्रुव निश्चयस्वरूप चेतन आत्मा इनकी प्ररूपणा केवलीजिनने की है ॥ ३० ॥ तीन प्रकारके मिथ्या-त्वका त्याग और तीन प्रकारके कुज्ञानका त्याग होना चाहिये तथा शुद्ध आत्माकी शुद्ध भावना होनी चाहिये । जो भव्यजन ऐसा करते हैं उनका जीवन सफल है ॥ ३१ ॥ ऐसे यथार्थ पूज्य पंच परमेष्ठीकी शुद्ध पूजा करनी चाहिये । यहशाश्वत मोक्षश्रीको प्राप्त करने के लिये व्यवहार निश्चय स्वरूप मोक्षमार्ग है ॥ ३२ ॥

उपसंहार

पण्डित पूजा जीवन में चरितार्थ करनेके लिये यह अत्युपयोगी बत्तीसी है। इसके अन्तमें व्यवहार और निश्चय दोनों मोक्षमार्गोंका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। निश्चय मोक्षमार्ग वस्तुस्वरूप है और व्यवहार मोक्षमार्ग यतः सकषाय जीवसे मन-वचन-कायकी बाह्य प्रवृत्ति रूप है। अतः निश्चय मोक्षमार्गका अनुगामी होनेसे या सहचर होनेसे वह आत्माके स्वाभाविक स्वरूपकी अपेक्षा मोक्षमार्ग नहीं है। परमार्थसे उसे मोक्षमार्ग मानना परमार्थकी अवहेलना करना मात्र है। इतना अवश्य है कि स्वानुभूति या शुद्धोपयोगके कालमें बाह्य मन-वचन-कायकी प्रवृत्ति न होने पर अप्रत्याख्यान आदि कपायोंका सद्‌भाव बना रहता है, इसलिये ज्ञानी मोक्षमार्गी जीवके सविकल्प अवस्थाके समान निर्विकल्प अवस्था में भी अबुद्धिपूर्वक शुभभाव स्वीकार करके इस अपेक्षासे सकषाय अवस्थामें व्यवहार मोक्षमार्गको स्वीकार किया जाता है।

इस बत्तीसीमें पण्डित पूजाको स्पष्ट किया है। सर्व प्रथम पंचपरमेष्ठी और देव, गुरू तथा शास्त्रका संक्षिप्त स्वरूप बतलाकर स्वानुभूतिसे सनाथ जो व्यक्ति इन तीनोंकी उपासना करता है वह पण्डित है यह स्पष्ट किया गया है, क्योंकि भावके विना द्रव्य का कोई स्थान नहीं है। फिर भी पूजकके अन्तरंग ओर बहिरंग वेशाका इसमें बड़ी ही अध्यात्म शैलीमें समर्थन किया गया है। इसमें आत्माके रत्नत्रय धर्मको स्नानका शुद्ध जल बनाया गया है,

साथ ही ध्यानको शुद्ध जल और ज्ञानभावको स्नान बताया गया है। तीनलोकको जाननेवाले ज्ञानको तालाब भी बताया गया है। ज्ञानरुपी शुभ जलमें अवगाहन करना ही स्नान है यही सच्चा अन्तरंग स्नान है। ऐसे पंडितके तीनों प्रकारके मिथ्यात्व, कुज्ञान, राग-द्वेष, अप्रत्याख्यानादि कषाय, अशुद्ध भावना आदि सब दोष दूर हो जाते हैं, यही उत्तम वस्त्रका धारण करना है, यही आभ-रण, आभूषण और मुकुटका पहनना है। ऐसे पण्डित ही देव, गुरु और शास्त्रका सच्चा पूजक है। ऐसे पण्डितके तीन-लोकमूढ़ता, कुदेव और कुगुरुकी पूजा, आठ मद आदि दृष्टिगोचर नहीं होते। ऐसे जिनेन्द्र कथित जिनमार्ग पर चलनेवाला ही पण्डित है वह स्वयं लोकमें सदा पूजित होता है। वह अदेव और अगुरुकी पूजाको मिथ्यात्व जानता है। इस प्रकार इस ग्रन्थमें भाव-पूजा का सुन्दर विवेचन किया गया है। उससे अनुगत द्रव्य-पूजा कैसी होती है इसका भी इसमें संकेत किया गया है।

स्वामीजीने इसमें अदेव और अगुरुकी पूजाको मिथ्यात्व बतलाया है। मालूम पड़ता है कि उनके कालमें शासन देवताके नाम पर व्यन्तरादि देवोंकी पूजा प्रचलित होने लगी थी और सुगुरुके नाम पर अगुरु स्वरूप भट्टारक पूजे जाने लगे थे। उन्हीं की पूजाका निषेध करनेके लिये स्वामीजीने यहां अगुरु और अदेव जैसे शब्दोंका प्रयोग किया जान पड़ता है। मेरा तो यह भी अनुमान है कि इन गुरु कहलानेवाले भट्टारकोंने समाजको भड़का-कर उनका बहिष्कार तक कराया होगा। किन्तु वे अध्यात्मके

रसिया महापुरुष थे। उन्होंने बहिष्कृत होना तो स्वीकार किया किन्तु अपनी दृढ़ श्रद्धासे अणुमात्र भी विचलित नहीं हुए। इससे वे जगत पूज्य बन गये इसमें सन्देह नहीं।

●

कमलबत्तीसीका भावानुवाद

परम भावको दिखानेवाला परमात्मा ही सब तत्त्वोंमें श्रेष्ठ परम तत्त्व है। वे ही जिन हैं, वे ही परमेष्टी हैं ऐसे परम देवोंके देव जिनदेवकी मैं भाव-द्रव्य वन्दना करता हूँ॥ १॥ जो जिन-वचनका श्रद्धान है उसीसे कमलकी शोभावाला रागादि मलसे रहित आत्मभाव प्राप्त होता है, उसीको आर्जव भाव कहते हैं। इस आर्जवभावसे समभावरूप मुक्ति की प्राप्ति होती है॥ २॥ ज्ञान-स्वभाव आत्मा ही अनुमोदनी-उपासना करने योग्य, रागादिमल रहित ज्ञानस्वभाव सब रत्नोंमें श्रेष्ठरत्न है, ऐसे रागादि मल रहित अपने निर्मल ज्ञानस्वभाव अर्थात् ज्ञानस्वभाववाले आत्मा की उपासनाके फल स्वरूप सिद्ध पदकी प्राप्ति होती है॥ ३॥ तीन प्रकारके योग द्वारा तीन प्रकारके मिथ्यात्वको जीतना चाहिये, अव्रतभाव और असत्यरूप पर्यायको गलाना चाहिये, कुज्ञानको गलाना चाहिये तथा सब प्रकारके कर्मोंको भी गलाना चाहिये॥ ४॥ चेतन-आत्मानन्दस्वरूप है आनन्दस्वरूप है और सहजा-नन्दस्वरूप है। इसके आलम्बन से संसार पर्यायका अन्त कर देना चाहिये। अपने सहज ज्ञान द्वारा ज्ञान ही उपासना करने योग्य

है। समस्त कर्मोंका क्षय ज्ञानसे ही होता है कर्मोंका स्वभाव ही क्षय करने योग्य है ॥ ५ ॥ जिसकी दृष्टि उत्पाद-व्ययमें सम-भावरूप है और चेतनभावसे युक्त है उसके उसी दृष्टिसे तीनों प्रकारके कर्मोंका बन्ध गल कर विलीन हो जाता है ॥ ६ ॥ मन-स्वभावसे क्षय करने योग्य है, संसारकी परिपाटी भी स्वभावसे क्षय करने योग्य है, ज्ञानबलसे विशुद्ध हुई निर्मल उपासना कर्मोंका क्षय करनेमें समर्थ है ॥ ७ ॥ लोकका अनुरंजन करनेवाले राग-भावसे रहित, लड़ाई-झगड़ेसे अनुरंजन करनेवाले द्वेषभावसे मुक्त और मनको रंजायमान करनेवाले तीन प्रकारके भावसे रहित तीन प्रकारका वैराग्य उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥ दर्शनमोहरूपी अंध-कारसे रहित और राग-द्वेष तथा पंचेन्द्रियोंके विषयोंसे रहित आत्माका निर्मल स्वभाव उत्पन्न हुआ वह अनन्त चतुष्टयको प्राप्त करनेमें समर्थ है ॥ ९ ॥

रत्नत्रयसे ही शुद्ध आत्माका दर्शन है, पांचों ज्ञानोंमें पंचम ज्ञान ही परम इष्ट है तथा पंचाचाररूप सम्यक्चारित्र है। यही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है ॥ १० ॥ जो सम्य-ग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप है वही देवोंमें परमदेव है, वही गुरुओंमें परमगुरु है और वही समभावसे युक्त धर्मोंमें परम धर्म है ॥ ११ ॥ पांचवें ज्ञानस्वरूप आत्माके अस्थिर योगको जीतने पर तथा ज्ञानभावसे पूर्ण ज्ञान होने पर स्वभावसे निर्मल स्वभावकी सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ आनन्दस्वभाव और आनन्द-मय चिदानन्दका चिंतवन करना, यही स्वभावसे मलस्वरूप कर्मों का क्षय करना है वह स्वभावसे अनुमोदन करनेरूप तथा निर्मल है

॥ १३ ॥ जो परसे भिन्न स्वात्माको अनुभवता है, स्वात्मासे भिन्न पररूप पर्यायोंसे तथा तीन प्रकारकी शल्योंसे मुक्त है वह शुद्ध ज्ञानस्वभाव और पर निरपेक्ष शुद्ध चारित्ररूप आत्माको प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ अब्रह्मका सेवन नहीं करना चाहिये, चारों प्रकार की विकथा और सातों प्रकारके व्यसनोंका त्याग कर देना चाहिये, क्योंकि ज्ञायकस्वभाव आत्मा ज्ञानस्वभाव है ऐसा निर्मल समयका सहकार ही उपासने योग्य है ॥ १५ ॥ जिनवचन स्वभावरूप है अर्थात् वस्तुस्वभावका दर्शन करनेमें समर्थ है। उसीके अनुगमनसे मिथ्यात्व कषाय और कर्मोंको जीतो। इसीसे इस आत्मा को शुद्ध आत्मा और परमात्माका निर्मल दर्शन होता है ॥ १६ ॥

इष्ट अर्थात् जो मोक्षमार्गमें उपादेयभूत जो शुद्ध आत्मा है उसीपर जिनदेवकी दृष्टि है, अथवा जिसका जिनदेवने उपदेश दिया है वही हमारा इष्ट शुद्ध आत्मा है। उस इष्टमें उपयोगको युक्त करना चाहिये और अनिष्ट जो संसारके प्रयोजन हैं उनका बुद्धिपूर्वक त्याग कर देना चाहिये जो इष्ट है वह सदा इष्ट स्वरूप है। वह निर्मल स्वभाव है अतः उसमें उपयुक्त होनेसे कर्मोंका स्वयं क्षय होता है ॥ १७ ॥ अज्ञानसे जो अत्यन्त दूर हैं, क्योंकि ज्ञान-स्वभावसे अनुपम और निर्मल स्वभाववाला है। ज्ञानपर्याय, दृष्टि का विषय नहीं है, क्योंकि वह पर्यायदृष्टि है, अतः अतिशीघ्र अन्तर दृष्टि होना चाहिये ॥ १८ ॥ आत्मा आत्मस्वरूप है, आत्माके शुद्धात्मा होने पर वही विमल परमात्मा हो जाता है, क्योंकि आत्मा स्वभावसे परमस्वरूप है, वह बाह्य रूपसे रहित है

और निर्मल ज्ञानस्वरूप है ॥ १६ ॥ वह निर्मल है, निर्मलस्वभाव है, ज्ञान-विज्ञानरूप है। सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्तिका हेतु है। यह जिनदेवने कहा है, यही जिनदेवका वचन है। क्योंकि जिनदेवको निमित्त कर मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ २० ॥ षट्काय जीवों पर विमलभावको निमित्त कर कृपा करनी चाहिये, क्योंकि प्राणीमात्र के जीव समान ज्ञान-दर्शन स्वभाववाले हैं। क्लिष्ट जीवों पर वह कृपा भी विमल भावरूप होनी चाहिये ॥ २१ ॥ अत्यन्त अनिष्ट वस्तुका संयोग होने पर विमल शुद्ध स्वभावके बलसे मध्यस्थ हो जाना चाहिये। जीव स्वभावसे शुद्ध कहा गया है ऐसी शुद्ध दृष्टि होनेसे कर्मोंका स्वयं क्षय होता है ॥ २२ ॥ सब संसारी जीव क्लिष्ट-दुःखी हो रहे हैं। उसकी अनुमोदनाके निमित्तसे दुर्गतिमें गमन होता है। जो विरोध स्वभाववाले जीव हैं वे दुःखरूप मार्ग पर चलते हुए संसार परम्परामें पड़ रहे हैं ॥ २३ ॥ सुखमय अर्थात् आत्मा ज्ञानस्वभाव है, ज्ञानस्वभावकी उपासना करने पर उसके योगसे निर्मल अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। ज्ञान सदाकाल ज्ञानस्वरूप है। उससे निर्मल सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ २४ ॥ जो परम इष्ट है वही इष्ट है, इष्टकी उपासना वह अनिष्ट अर्थात् संसारके प्रयोजनसे रहित है। वह पर द्रव्योंकी पर्यायसे रहित है, क्योंकि ज्ञानस्वभावसे कर्मोंपर विजय प्राप्त होती है ॥ २५ ॥ जिनवचन शुद्धसे भी शुद्ध है, उसकी उपासनासे विविधकर्म रहित शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है। आत्मा स्वभावसे निर्मल है, निर्मल स्वरूप है, क्योंकि जो रत्न होता है वह रत्नस्वरूप ही होता

है ॥ २६॥ सुगुणोंकी उत्पत्ति श्रेष्ठ है, उनके निमित्तसे कर्मोंका क्षय होता है यह श्रेष्ठ कार्य है। कमल अर्थात् आत्मा श्रेष्ठ और इष्ट दोनों हैं। यह आत्मा कमलकी शोभावाला है और कमलके समान कोमल तथा निर्मल होता है॥ २७॥ जिनवचनके निमित्तसे मिथ्यात्व, अज्ञान और तीनों शल्योंका अभाव होता है। विषय और कषायोंका अभाव होता है तथा उसीसे सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होती है और कर्मोंका क्षय होता है॥ २८॥ आत्मा आत्मस्वरूप है, वह षट्कमल, रत्नत्रय और निर्मल आनन्द स्वरूप है। दर्शन-ज्ञानस्वरूप है। वही निर्मल चारित्र है तथा कर्मोंका क्षय करने वाला है॥ २९॥ जिसने अपने ज्ञानस्वभावसे संसारपरिपाटीकी ओर दृष्टि नहीं की तथा संसारी मलिन पर्यायकी ओर दृष्टि नहीं दी है ऐसा कमलके समान निर्मल जो ज्ञान है वही निर्मल ज्ञान-विज्ञान उपासने योग्य है॥ ३०॥ जिनदेवके कहे वचनका श्रद्धान करनेसे तथा निर्मल शुद्ध आत्मा और परमात्माकी श्रद्धा करनेसे परमभावकी उपलब्धि होती है, इस प्रकार धर्मस्वभावकी प्राप्ति होनेपर नियमसे कर्मोंका क्षय होता॥ ३१॥ जिनदेवने कहा है कि शुद्ध दृष्टिकी प्राप्ति होने पर तीन प्रकारके योगसे तीनों प्रकार के कर्मोंका क्षय होता है। अनुपम ज्ञान ही विज्ञान है। वह निर्मल स्वरूप है और उससे मुक्तिकी प्राप्ति होती है॥ ३२॥

❀

उपसंहार

यह कमलबत्तीसीका भावानुवाद है। इसकी मात्र दो-चार गाथाओंमें कमल शब्द आया है। कमल और आत्मा दोनोंके अर्थ में इसका उपयोग हुआ है। एक गाथामें षट्कमल शब्द आया है। गंजबासौदाके ठिकानेसार ग्रंथ पत्र सं. १४ कमलोंका उल्लेख है— १. मसुठौ लवनु (मसूडे), २. इष्ट उष्ट (ओठ), ३. इष्ट कंठु उत्पन्न कंठु, २. इष्ट तालु उत्पन्न तालु, २ इष्ट दर्श उत्पन्न दर्श। गंज-बासौदा श्री निसईजीके ठिकानेसार पत्र सं. २३ में चतुर्मुख भगवान्‌के चारमुखोंके लिये उत्पन्न कमल, देवकमल, दत्तकमल और तारकमल ये चार नाम आये हैं। मल्हारगंज श्री निसईजीके ठिकानेसार पत्र सं- ३२ में इष्ट कण्ठ, उत्पन्न कण्ठ, इष्ट तालु, उत्पन्न तालु, इष्ट लखि (नेत्र), उत्पन्न लखि (नेत्र), इष्ट गंमि (चरण), उत्पन्न गंमि चरण ये नाम आये हैं। इन सबको कमलके भेद कहा गया है। अभी तक तीनों ठिकानेसार ग्रंथोंमें षट्कमलका उल्लेख मेरे देखनेमें नहीं आया। किन्तु बत्तीसीमें यह शब्द आत्माके विशेषण रूपमें आया है। मालूम पड़ता है इससे स्वामीजीने ज्ञायकस्वभाव आत्मा और पांचों परमेष्टी इन छहको ग्रहण किया है। इनमेंसे ज्ञायक आत्मा स्वभावसे निर्मल और पांच परमेष्टी कमलके समान निर्मल परिणामवाले होते हैं, सम्भव इसीलिये इनका षट् कमल शब्द द्वारा स्वामीजीने उल्लेख किया है। जो हो, उनका जीवन अध्यात्म में ऐसे रम गया

था जैसे कमलमें सुगंध। उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें आत्माको नन्द, आनन्द, चिदानन्द, सहजानन्द और परमानन्द स्वरूप बतलाया है। इस बत्तीसीमें भी आत्माके अर्थमें एकादि शब्दको छोड़कर इन शब्दों द्वारा तत्स्वरूप बतलाया है। वे इष्ट क्या है और अनिष्ट क्या है, इस संसारी जीवको देव, शास्त्र और गुरुका या मुख्यता से अपने आत्माका विशदूरुपसे विवेचन करते हैं और अनिष्टरूप संसारके प्रयोजनोंसे दूर रहनेका उपदेश देते हैं। उनकी वाणीमें जादू है। उन्होंने अध्यात्मको जीवनमें उतारकर तथा अपने उपदेशों और ग्रन्थ-रचना द्वारा ऐसे वातावरणका निर्माण किया जिससे इस प्रदेशसे धीरे—धीरे भट्टारकीय क्रिया-काण्डका अन्त होकर शुद्धात्मा का प्रचार हो सका।

मुझे तो ये तीनों बत्तीसियां तीन रत्न प्रतीत हुए। जैसे रत्नोंका हार गले और छातीकी शोभा बढ़ाता है वैसे ही ये तीनों बत्तीसियां कण्ठ और हृदयमें धारण करने लायक हैं। जिनागमसे इनमें किसी प्रकारका विरूद्ध कथन किया हो ऐसी कल्पना करना अपने अज्ञानको उजागर करना मात्र है। इनका सभी स्वाध्याय-प्रेमी मनन और अनुगमन करें ऐसी भावना है।

●

इस निबन्धको मूर्तरूप देनेकी प्रेरणा मुझे श्री श्रीमन्त सेठ डालचंदजी सागरवालोंकी ओरसे मिली है। ये आदरणीय श्रीमन्त सेठ भगवानदासजीके बड़े सुपुत्र हैं। अब वृद्धावस्थाके कारण

श्रीमन्त सेठजी शारीरिक स्थिति जर्जर होती जा रही है। फिर भी उनके मनमें धर्म और धर्मकार्योंके प्रति पूर्ववत् उत्साह बना हुआ है। हृदयके सरल और मिलनसार हैं। वे बाह्य लक्ष्मीकी चपलताको नहीं भूले हैं। इसलिये धर्म सम्बंधी जो कार्य उन्हें करणीय लगता है उसमें उदारता पूर्वक खर्च करनेमें हिचकिचाहट का अनुभव नहीं करते। सागरमें ही उन्होंने उदारताके अनेक कार्य किये हैं जो दर्शनीय हैं। उनके इन कामोंमें उनके लघु भ्राता श्री श्रीमन्त सेठ शोभालालजीका भी सदा सहयोग रहता है। इन दोनों भाईयोंमें जो परस्पर स्नेह है वह औरोंके लिए अनुकरणीय है।

यह प्रसन्नताकी बात है कि ज्येष्ठ पुत्र श्री डालचन्दजी उनके पद-चिन्हों पर चल रहे हैं। और जो निर्देश अपने बड़ोंसे वे प्राप्त करते हैं उसका अक्षरशः पालन करते हैं। इससे लगता है कि इस परिवार द्वारा उत्तरकालमें भी समाज और धर्मकार्य इसी प्रकार अनुप्राणित होते रहेंगे। मेरा यह निबन्ध श्री जिन तारण-तरण स्वामीके जन-कल्याणके लिये किये गये त्याग और उनकी मौलिक साहित्य-रचनाके ऊपर कुछ भी प्रकाश डाल सका तो मैं अपनेको धन्य समझूंगा। विज्ञेषु किमधिकम्।

बी २/२४९
निर्वाण भवन,
रवीन्द्रपुरी,
बारानसी-५
२०-९-७७

—फूलचन्द शास्त्री

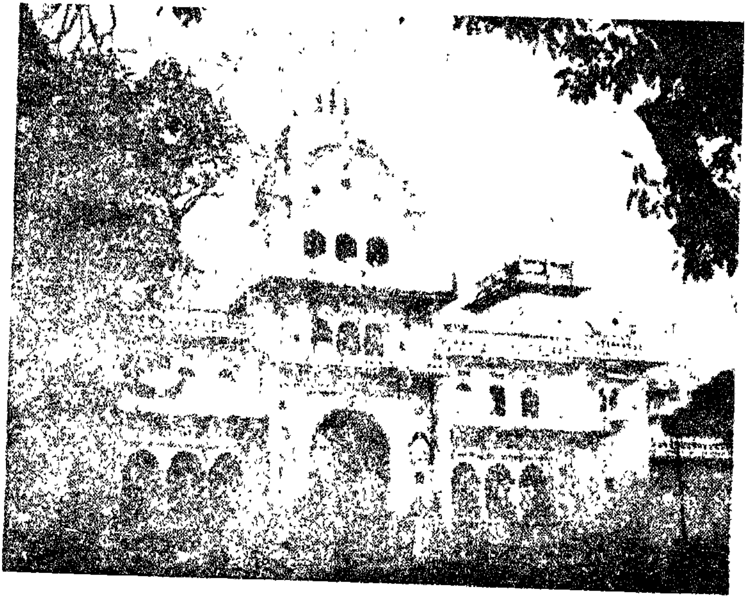
[—पंडित फूलचन्द जैन
सिद्धान्तशास्त्री]

श्री तारण तरण स्वामी विरचित पांच मतों में विभाजित

चौदह ग्रन्थ

१ आचार मत– १	१ तारण तरण श्रावकाचार
२ विचार मत– ३	२ मालारोहण ३ पंडित पूजा ४ कमल बत्तीसी
३ सार मत– ३	५ ज्ञान समुच्चय सार ६ उपदेश शुद्ध सार ७ त्रिभंगी सार
४ ममल मत– २	८ ममल पाहुड़ ९ चौबीस ठाणा
५ केवल मत– ५	१० छद्मस्थ वाणी ११ नाम माला १२ खातिका विशेष १३ सिद्ध स्वभाव १४ सुन्न स्वभाव

श्री १००८ तीर्थक्षेत्र निसईजी-मल्हारगढ़



मुख्य प्रवेशद्वार- (हाथी दरवाजा)

ॐ

श्रीमत तारनतरनस्वामी विरचित

पण्डित पूजा

भाषाटीका सहित

ओंकारस्य ऊर्धस्य, ऊर्ध्वसद्भावशाश्वतं।
विंदस्थानेन तिष्ठंते, ज्ञानेन शाश्वतं ध्रुवं। १।

अर्थः– ॐ शब्दका भाव अविनाशी ज्ञानमई आत्मपद है। वही सर्वोत्कृष्ट आत्माका स्वरूप है।

भावार्थः– ॐ शब्दमें अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्टी गर्भित हैं। पंच परमेष्टी पवित्र आत्माकी पर्यायें हैं, भाव यह है कि, ॐ और पंच परमेष्टी दोनों एक शुद्ध आत्मा हीके नामान्तर हैं। यह आत्मा स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करनेवाला और अपने स्वरूपसे निर्मल तथा अनादि अनंत है–था, और रहेगा। यद्यपि आत्मा अनंत गुणात्मक है तथापि 'ज्ञान' उसका असाधारण लक्षण है। इस ज्ञानस्वरूप आत्मा अर्थात् ब्रह्मको ग्रन्थके आरम्भमें ग्रन्थकारने स्मरण किया है। भाव यह है कि अपना शुद्ध, बुद्ध और निर्विकार आत्मा उपादेय है, उसीका मनन, चिंतवन और स्तवन करना ग्रन्थकारको इष्ट है।

'उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणम् ।'

अर्थात्–जिसका लक्षण एक मात्र उपयोग[1] है, ऐसा परमज्योतिरूप आत्मा उपादेय है॥ १ ॥

निश्चय नय जानंते शुद्ध तत्व विधीयते ।
ममात्मा गुणं शुद्धं, नमस्कारं शाश्वतं ध्रुवं॥ २ ॥

अर्थः–जो मनुष्य निश्चयनयको जानते हैं वे शुद्ध आत्म–तत्वको पहिचानते हैं अपने आत्माके शुद्ध गुणोंका अनुभव करते हैं। यही उनका सदा कालका सच्चा नमस्कार है ।

भावार्थः- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यमय लोकमें जीव द्रव्य प्रधान है । क्योंकि वह चैतन्यरूप है तथा अपने वा शेष पांच द्रव्योंका ज्ञायक है। उसका सत्य स्वरूप जाननेके लिये नय ज्ञानकी आवश्यकता है। उसका सामान्य स्वरूप इस प्रकार है कि, पदार्थमें अनेक धर्म पाये जाते हैं और वे एक साथ नहीं कहे जा सकते क्रमशः कहे जाते हैं। जैसे–पदार्थमें नित्य और अनित्य दोनों गुण हैं अर्थात् पदार्थ कभी नष्ट नहीं हो जाता–था, है और रहेगा; इसलिये नित्य है। इस नित्य धर्मको कथन करने वाला द्रव्यार्थिक नय है। और पदार्थों की अवस्थाएं बदलती रहती हैं इसलिये पदार्थ अनित्य है। इस अनित्य धर्मको

१– ज्ञान और दर्शन ।

कथन करनेवाला पर्यायार्थिक नय है ।

णाणाधम्मजुदंपि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं ।
तस्सेय विवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं ॥
स्वा० का०

अर्थात्–यद्यपि पदार्थमें अनेक धर्म रहते हैं तथापि पदार्थ एक धर्मरूप कहा जाता है, क्योंकि उसीकी अपेक्षा रहती है और शेषकी गौण रूप रहती है परन्तु उनका अभाव नहीं किया जाता ।

इसलिये नयकी परिभाषाके लिये ग्रन्थकारोंने कहा है कि–

लोयाणं ववहारं धम्मविवक्खाइ जो पसाहेदि ।
सुयणाणस्स वियप्पो सोवि णओ लिंगसंभूदो ॥
स्वा० का०

अर्थात्–जो पदार्थके एक धर्मकी विवक्षाको लोक व्यवहार में सिद्ध करता है वह नय है और श्रुतज्ञानका अंश है ।

यद्यपि नयके अनेक भेद हैं उनमें निश्चयनय और व्यवहार नय समझनेके योग्य हैं । पदार्थका असली स्वरूप कथन करनेवाला निश्चयनय, और कारणमें कार्यका कथन करनेवाला अथवा भेद – प्रभेद कहनेवाला व्यवहार नय है । श्री प्रवचनसारजीमें कहा है कि–

जे जे भेद विकल्प हैं, ते ते सब विवहार।
निरावाध निरकल्प सो, निश्चय नय निरधार॥

बस, इसीका नाम स्याद्वाद है और यही जैनधर्म समझने की असली कुंजी है। इससे जैनधर्मका रहस्य समझनेके लिये नयचक्र आदि ग्रन्थोंके द्वारा पहिले नय ज्ञानमें कुशल हो लेना चाहिये। जिस प्रकार शरीरमें दो नेत्र हैं उसीप्रकार जैन मतमें दो नय हैं। जब निश्चयनयको मुख्य करके कथन किया जाता है तब व्यवहार नय गौण रहता है परन्तु उसका अभाव नहीं होता और जब व्यवहारनयकी अपेक्षा कथन किया जाता है तब निश्चयनय गौण रहता है किन्तु उसका अभाव नहीं रहता। यदि एकान्त ग्रहण किया जावे अर्थात् केवल निश्चय नयकाही अवलम्बन लिया जावे अथवा केवल व्यवहार ही व्यवहारकी चिल्लाहट मचाई जावे तो वह सिद्धांत एकान्त रूप होनेसे मिथ्यात्वके भावको प्राप्त होता है। प्रवचनसारमें कहा है कि–

जहां एक ही पक्ष गह गहत वचनकी टेक।
तहां होत मिथ्या मत सधत न वस्तु विवेक॥
तातैं दोनों नयनको दोनों नयन समान।
जथा थान श्रद्धान कर वृन्दावन सुखमान॥

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षाजीमें कहा है–

जय जिणमये पवज्जइ तामा ववहारणिच्चयं मुअए।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण पुणः तच्चं ॥

अर्थात्–जो जैनमतके प्रवर्तक हो तो व्यवहार और निश्चयनयोंको मत छोड़ो। यदि व्यवहारको छोड़ोगे तो धर्म नष्ट हो जावेगा और निश्चयको छोड़ोगे तो तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं होगी।

इस ग्रन्थमें निश्चयनयकी मुख्यतासे कथन किया गया है और पहिले भी कह आये हैं कि निश्चयनय वस्तुके असली स्वरूपको कहलानेवाला है। अनंत भूतकालसे पंच परिवर्तन रूप संसारमें संसरण करते हुए इस संसारी जीवने व्यवहार नयका उपदेश बार बार श्रवण, ग्रहण किया है परंतु सत्यार्थ निश्चयनयका उपदेश कभी नहीं पाया है इसलिये असली तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये निश्चयनयके स्वरूपको भले प्रकार मनन और ग्रहण करना उचित है। समयसार-जीमें कहा है–

यह निचोर सब ग्रंथको यहै परम रस पोष।
तजैं शुद्ध नय बंध है, गहैं शुद्ध नय मोष ॥

भाव यह है कि, निश्चयनय ही तत्त्वज्ञान व शुद्ध आत्म-स्वरूपकी प्राप्तिमें प्रधान कारण है, आत्मज्ञानके अभिलाषियों–

को उसीकी उपासना करना चहिये । जिन्होंने आत्माका असली ज्ञान करानेवाले निश्चयनयको समझ लिया है उन्होंने ही अरहंत परमेष्टीको सच्चा नमस्कार किया है और वे ही निरंजन तथा निर्विकार निजात्माका अनुभव करते हैं ॥ २ ॥

ॐ नमः विंदते जोगी सिद्धं भवत्, शाश्वतं ।
पंडितो सोपि जानंते, देवपूजा विधीयते ॥ ३ ॥

अर्थः – जो योगी "ॐ नमः" शब्दके भावको अविनाशी सिद्ध भगवानका अनुभव समझता है वही पंडित है और वही सच्ची देव पूजा करता है ।

भावार्थः– ॐ शब्द अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पंचपरमेष्टीका वाचक है । इसमें अरहंतके आदिका अक्षर 'अ' अशरीर (सिद्ध) के आदिका अक्षर 'अ' आचार्यके आदिका अक्षर 'आ' उपाध्यायके आदिका अक्षर 'उ' और मुनियोंका (साधुओंका) आदिका अक्षर 'म्' इस तरह अ+अ+आ+उ+म् इन पांच अक्षरोंके 'दीर्घः' १-१-७७ और "इक्येंडर" १-१-८२ इन शाकटायन व्याकरण सूत्रोंके अनुसार सन्धित करनेसे ओम् अथवा ओं अक्षरकी सिद्धि होती है ।[1] ये पंच पद आत्मा ही की शुद्ध और एकदेश शुद्ध पर्याएं हैं, इसलिये ॐ ही ब्रह्म है ।

१– अरहंतो असरीरा आइरिया तह उवज्झया मुणिणो ।
पढमक्खर णिप्पण्णो ओंकारो पंच परमेट्ठी ॥

जो आसन, प्राणायाम, यम, नियम, धारणा, ध्यान, प्रत्याहार और समाधि इन अष्टांगयोगको[1] धारण करनेवाले अथवा मन-वचन-कायके योगोंका निग्रह करनेवाले योगी नित्य अविनाशी परमब्रह्मको पहिचानते हैं और अनुभव करते हैं वे ही पंडित हैं। मात्र छन्द, व्याकरण, काव्य आदि शब्द शास्त्रके पठन-पाठनसे पाण्डित्य प्राप्त नहीं होता, नय प्रमाण पूर्वक आत्मस्वरूपके भले प्रकार श्रद्धान, ज्ञान और चारित्रसे जीव पंडित पद प्राप्त करता है। और वही पंडित निजात्म-देवके सत्य स्वरूपको पहिचानता है और वह तब निजात्माका अनुभव करता है ॥ ३ ॥

ह्रींकारं ज्ञानं उत्पन्नं, ओंकारं च वंदते।
अरहं सर्वज्ञ उक्तं च, अचक्षुदर्शन दृष्टते ॥

अर्थः— ज्ञान मई आत्माका जो अनुभव करता है वही अरहंत सर्वज्ञको जानता है। जिसको वह अचक्षुदर्शनसे अर्थात् मन द्वारा दर्शनोपयोगसे देखता है।

भावार्थः—महाशास्त्र श्री तत्त्वार्थसूत्रजीमें आत्माका लक्षण उपयोग कहा है[2]। वह उपयोग यद्यपि ज्ञान और दर्शनके

१— आसन प्राणायाम यम नियम धारणा ध्यान।
प्रत्याहार समाधि ये अष्ट योग पहिचान ॥

२— उपयोगो लक्षणम्। (त० सू० अ० २)

भेदसे दो प्रकार है और यदि सामान्य ग्रहण है लक्षण जिसका ऐसा दर्शन, विशेष ग्रहण है लक्षण जिसका ऐसे ज्ञान ही में समावेश किया तो आत्मा शुद्ध ज्ञान का पिण्ड ही है। यह पूर्ण ज्ञानी आत्मा लोक अलोकके सर्व चेतन पदार्थोंका ज्ञायक है। जिस प्रकार दीपक अन्य पदार्थों को प्रकाशित करता है और अपनेको भी प्रकाशित करता है उसी प्रकार ज्ञानस्वरूप आत्मा जगतके सब पदार्थों को जानता है और अपने स्वरूपको भी जानता है। वह सकल ज्ञेयका ज्ञायक होने पर भी अपने आत्मिक रसके आनन्दमें तल्लीन रहता है। जगतके मोही और मंदज्ञानी जीव किसी अंशमें किसी किसी ज्ञेयको यदि जानते हैं मोहके सद्भावमें उन ज्ञेयोंमें राग-द्वेष-मोह करते हैं और अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र गुणोंको दूषित करते हैं। परन्तु पूर्ण ज्ञानी आत्मा ज्ञेय पदार्थों का मात्र ज्ञाता-दृष्टा है, उनसे अहंकार ममकार नहीं करता अपने शुद्ध बुद्ध परमात्माका अनुभव करता है। ऐसी निर्विकार दशामें वह अरहंत और सर्वज्ञ कहलाता है। सम्यग्ज्ञानी लोग उस अरहंत और सर्वज्ञ देवको मनके द्वारा देखते हैं।

पूर्वमें कह आये हैं कि उपयोगके दो भेद हैं। पदार्थके सामान्य सत्ता मात्रके अवलोकनको दर्शनोपयोग कहते हैं। वह चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शनके भेदसे चार प्रकारका है। चक्षु अर्थात् नेत्र इन्द्रियके द्वारा

जो पदार्थकी सामान्य सत्ताका ग्रहण होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। नेत्रके सिवाय शेष चार इंद्रियों–स्पर्शन, रसन, घ्राण, कर्ण और मनके द्वारा पदार्थकी जो सामान्य सत्ताका ग्रहण होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं। अवधिज्ञानसे पहिले होनेवाले सामान्य अवलोकनको अवधिदर्शन कहते हैं। केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्य अवलोकनको केवलदर्शन कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्माको दर्शनोपयोग पूर्वक जानते हैं। श्रीमत् बृहद्द्रव्यसंग्रहजीमें कहा है—

दंसणपुव्वं णाणं छदुमत्थाणेण दुण्णि उवओगा।

अर्थात्—क्षयोपशम ज्ञानियोंको दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है। सो सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्माको चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल इन चार दर्शनोपयोगमेंसे कौनसे दर्शनोपयोग पूर्वक जानते हैं इसको आचार्य महाराज श्रीमत् तारनतरन स्वामीने स्पष्ट किया है कि, मनके द्वारा होनेवाले अचक्षु दर्शनोपयोग पूर्वक जानते हैं। वास्तविक पूजक बननेवाले और सत्यार्थ आत्मदेवकी खोज करनेवाले सच्ची पूजाके प्रेमियोंको चाहिये कि वे नित्य, निर्विकार, विज्ञानघन, परम देव, शुद्ध, बुद्ध, चित् चमत्कार और आनंदकंद परमात्माका स्वरूप भले प्रकार निर्णय करके ग्रहण करें और उसकी भावनामें लीन होवें ॥ ४॥

मतिश्रुतश्च संपूर्णं, ज्ञानं पंचमयं ध्रुवं।
पंडितो सोपि जानंते, ज्ञानं शास्त्र स पूजते ॥५॥

अर्थः—जो मतिज्ञान व श्रुतज्ञानको पूर्णरूपसे जानता है उसका ज्ञान सदा मानो पांच ज्ञान रूप है वही पंडित है वही ज्ञान शास्त्र द्वारा पूज्यनीय है।

भावार्थः—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पांच ज्ञानके भेद हैं। इन्द्रिय और मनकी सहायतासे जो ज्ञान हो, उसे मतिज्ञान कहते हैं। मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थसे सम्बन्ध लिये हुए किसी दूसरे पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे—'घट' शब्द सुननेके अनंतर उत्पन्न हुआ कंबुग्रीवादि रूप घटका ज्ञान नियमसे मतिज्ञान पूर्वक होता है। द्वादशांगका ज्ञान श्रुतज्ञान हीके विकल्प हैं और वास्तवमें तो अपने आत्माका स्वरूप भले प्रकार निर्णय करके जानना ही श्रुतज्ञान है। अवधि नाम मर्यादाका है, सो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लिये हुए रूपी पदार्थको एक देश स्पष्ट जाननेको अवधिज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान देव, नारकी और तीर्थंकरोंको तो पर्याय पाते ही होता है और सम्यग्दर्शन आदि कारणोंसे मनुष्य और सैनी तिर्यंचोंको होता है। जो पर्यायजनित अवधिज्ञान होता है वह आत्माके सर्व प्रदेशोंमें होता है और क्षयोपशमसे होता है व नाभिके ऊपर शंख, पद्म, वज्र, स्वस्तिक, कलश आदि जो शुभ चिह्न

होते हैं उस जगहके आत्मप्रदेशोंमें होता है। मनःपर्यय ज्ञान दूसरेके मनमें तिष्ठते हुए रूपी पदार्थको जानता है। यह ज्ञान भावलिंगी ऋद्धिधारी मुनिराजको ही होता है। और मनके आत्मप्रदेशों पर इसका क्षयोपशम रहता है। जो संपूर्ण पदार्थोंकी त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण पर्यायोंको युगपत् (एक साथ) स्पष्ट जाने, उसे केवलज्ञान कहते हैं। यथा–

सकल द्रव्यके गुण अनंत पर्याय अनंता।
जानै एकै काल प्रगट केवलि भगवंता॥

इन पांचों ज्ञानोंमें श्रुतज्ञान सराहनीय है, क्योंकि इसके बिना अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान नहीं उपज सकते। श्रुतज्ञानमें और ज्ञानोंकी अपेक्षा सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह ज्ञान दूसरोंको दिया जा सकता है और दूसरोंसे लिया भी जाता है। यह ज्ञान केवलज्ञानके समान ही है। श्रीमत् गोम्मटसारजी में कहा है–

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं॥

अर्थात्–ज्ञानकी अपेक्षा श्रुतज्ञान तथा केवलज्ञान दोनों ही सदृश हैं। दोनोंमें अन्तर यही है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवलज्ञान प्रत्यक्ष है।

यह श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक ही होता है इससे आचार्य

ने श्रुतज्ञानके सिवाय मतिज्ञानको भी महत्त्व दिया है। इससे आत्मज्ञानकी सिद्धिके लिये मतिज्ञान और श्रुतज्ञानकी उपासना आवश्यक है, क्योंकि ये दोनों ज्ञान ही केवलज्ञानको प्रगट करते हैं। किसीको अवधि व मनःपर्यय ज्ञान न हों तो भी वह केवली हो सकता है। जिसने सम्यग्दर्शन सहित मतिज्ञान और श्रुतज्ञान प्राप्त किये हैं वही पंडित है, उसीका ज्ञान पूजने योग्य है॥ ५॥

ॐ ह्रीं श्रींकारं, दर्शनं च ज्ञानं ध्रुवं।
देवं गुरुं श्रुतं चरणं, धर्म सद्भावशाश्वतं॥६॥

अर्थः—जो ॐ ह्रीं श्रीं रूप है अर्थात् शुद्ध आत्मा है, परम श्री अर्थात् परमज्ञान ऐश्वर्य है तथा जिसमें अविनाशी दर्शन व ज्ञान हैं वही देव है, शास्त्र है, धर्म है और वही अविनाशी सत्तारूप पदार्थ है।

भावार्थः—चरणानुयोगमें रागद्वेष रहित आत्माकी शुद्ध अवस्था अर्थात् अरहंत सिद्धको देव, अरहंत भगवंतकी दिव्य वाणीको शास्त्र, चौबीस प्रकारके परिग्रहसे रहित परम तपमें लीन रहनेवाले आचार्य, उपाध्याय और साधुको गुरु, क्षमादि व रत्नत्रय तथा अहिंसाको धर्म व कषाय तथा पंचपापकी निवृत्तिको चारित्र कहा है। परन्तु यह अध्यात्म शास्त्र है इस ग्रन्थमें दर्शन ज्ञानमई आत्माका कथन प्रधान है, सो आत्मा ही वीतराग और परमपदको प्राप्त करनेवाला है।

इससे आत्मा ही देव है, आत्मा ही शास्त्र है, आत्मा ही गुरु है, आत्मा ही धर्म है और आत्मा ही चारित्र है। अभिप्राय यह है कि, जगतके अनंत चेतन अचेतन पदार्थोंमें निजात्मा ही सार भूत है सो सम्पूर्ण संकल्पसे विमुक्त होकर अपने नित्य और निर्विकार आत्माकी भावनामें लीन रहना चाहिये, जो आत्मलीन है वह सच्चा देव, शास्त्र, गुरु व धर्मका भक्त है।

वीर्यं अंकूरणं शुद्धं, त्रैलोकं लोकितं ध्रुवं।
रत्नत्रयं मयं शुद्धं, पंडितो गुण पूजते ॥७॥

अर्थः—वही शुद्ध स्वाभाविक वीर्य रूप है वह सदा तीन लोकको देख सकता है, वही रत्नत्रय मई गुण है। ये पंडितके गुण कहे जाते हैं और इनको पूजना चाहिये।

भावार्थः- अनंत भूतकालसे संसारी आत्मा कर्म मलसे लिप्त है, परन्तु जब वह ध्यानकी अग्निसे तपाया जाता है तो अंतराय कर्मके नष्ट होने पर उसका अनंत बल प्रगट होता है। यह अनंतवीर्य उसे किसीका दिया हुआ नहीं किंतु स्वाभाविक धर्म प्रगट होता है। जिस प्रकार आत्मामें अंनत बल है उसी प्रकार ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मके क्षय होनेसे उसका स्वाभाविक केवलदर्शन और केवलज्ञान प्रगट होता है, जिससे वह त्रैलोक्यका ज्ञाता दृष्टा बनता है। मोहनीय कर्मके नष्ट होनेसे उसका क्षायिक सम्यक्‌दर्शन और क्षायिक चारित्र प्रगट होता है तथा पूर्ण ज्ञानी होनेके कारण

वह रत्नत्रयका निधान बनता है। ऐसा अनंत बल, अनंत दर्शन, अनंतज्ञान और अनंत सुखका धारक आत्मा ही पंडित है। जो कुछ लोकमें पंडितके गुण और विशेषतः प्रसिद्ध हैं वे सब आत्माके हैं इसलिये आत्मीक गुणोंको ही पूजना चाहिये ॥ ७ ॥

देवं गुरूं श्रुतं वंदे, धर्मशुद्धं च वंदते ।
तीर्थं अर्थलोकं च, स्नानं च शुद्धं जलं ॥८॥

अर्थः- देव शास्त्र गुरूको वंदना करता हूँ, शुद्ध धर्मको वंदता हूं, तीर्थको, पदार्थोंको व लोक अर्थात् देखनेवाले आत्माको वंदना करता हूँ, शुद्ध आत्मीक जल ही स्नानके योग्य है।

भावार्थः-तारे सो तीर्थ। यदि तत्वदृष्टिसे देखा जावे तो आत्मा ही अपने पुरुषार्थसे अपनेको आप ही तारता है इसलिये आत्मा ही तीर्थ है। जो लोकमें गिरिनार, सम्मेदाचल आदि तीर्थ प्रसिद्ध हैं वे कारणमें कार्यका उपचार करके व्यवहार नयसे तीर्थ कहे जाते हैं क्योंकि संख्यातीत आत्माएं वहांसे तर गई हैं। वास्तवमें अनंत दुःखरूप जलसे भरे हुए संसारसे अपनेको तारनेवाला आत्मा ही तीर्थ है। वही देव है, वही शास्त्र है, वही गुरु है और वही धर्म है। इसलिये त्रिलोकदर्शी आत्मा रूप तीर्थमें विराजमान रहनेवाले आत्मा रूप देव, आत्मा रूप शास्त्र, आत्मा रूप गुरू और

आत्मा रूप धर्मको वंदना करता हूं तथा जो शुद्ध आत्मामें लय होता है वही सच्चे जलमें स्नान करता है ॥ ८ ॥

चेतनालक्षणो धर्मो, चेतियंत सदा बुधै ।
ध्यानस्य जलं शुद्धं, ज्ञानं स्नानपंडिता ॥९॥

अर्थः–आत्माका धर्म या स्वभाव चेतना लक्षणमई है जिसका अनुभव सदा बुद्धिमान जन करते हैं। ध्यानके लिये शुद्ध जल ज्ञान है। सो ज्ञान रूप जलसे पंडित जन स्नान करते हैं।

भावार्थ–देखने जाननेको चेतना कहते हैं। यही चेतना आत्माका धर्म व स्वभाव और लक्षण है। यह चेतना लक्षण आत्मामें सदा कालसे है और सदैव रहेगा अर्थात् चेतियता चेतन चेतता था, चेतता है और चेतता रहेगा। ऐसे चैतन्य रूप आत्माका भले प्रकार स्वरूप जाननेवाले विद्वान लोग सदा उसीका अनुभवन करते हैं। वे संसारके संतापसे विरक्त होकर अपने निजात्माके गुणोंका चिंतवन करते हैं और राग-द्वेष-मोह तथा संसारके जालसे पृथक् आत्माको आत्मा ही में स्थिर करके उसीमें मग्न रहते हैं। आत्माकी शुद्धि आत्मज्ञान ही से होती है इससे ज्ञानी लोग आत्माको पवित्र करने अर्थात् स्नान करानेके लिये आत्मज्ञान रूप शुद्ध जल हीसे न्हवन करते हैं। नदी तालावके जलका संस्कार अनित्य और मल भरे शरीर पर होता है, नित्य और

निर्मल आत्मा तक उसका प्रवेश नहीं है। ज्ञान ही एक ऐसा विलक्षण जल है जो आत्मा पर लगी हुई अनंत और दुर्निवार कर्म कालिमाके धोनेको समर्थ होता है। ज्ञानी लोग हमेशा ध्यानमें लीन रहते हैं इसलिये सदा पवित्र हैं, स्नानमय ही हैं ॥ ९ ॥

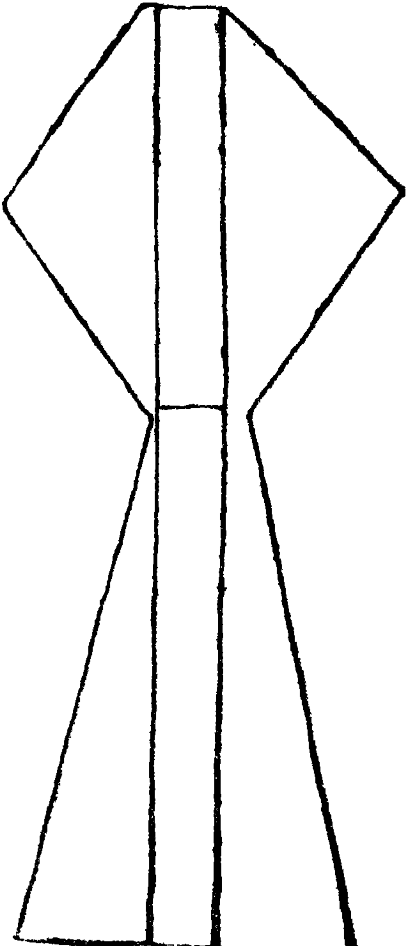
शुद्धतत्वं च वेदंते, त्रिभुवनंज्ञानं सुरं।
ज्ञानं मयं जलं शुद्धं, स्नानं ज्ञानं पंडिता ॥१०॥

अर्थः—तीन भुवनके ज्ञानके ईश्वर शुद्ध तत्त्वका अनुभव करते हैं। ज्ञानमई शुद्ध जलमें ही पंडितजन स्नान करते हैं।

भावार्थः-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं। उनमें चेतना लक्षण जीव, स्पर्श, रस, गंध, वर्णवन्त पुद्गल, गति सहाई धर्मद्रव्य, स्थिति सहाई अधर्म द्रव्य अवकाश दाई आकाश द्रव्य, और वर्तना लक्षण काल द्रव्य है। ये छहों द्रव्य अनादिकालसे हैं कोई इनका उत्पन्न व नाश करनेवाला नहीं है। एक और अखंड आकाशमें दो भागोंकी कल्पना की गई है—एक लोकाकाश और दूसरा अलोकाकाश। जितने आकाशमें जीवादि छहों द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं और शेष आकाशको अलोकाकाश कहते हैं।

लोकाकाशका आकार कमर पर कोहनी फैलाये हुए हाथ रखकर दोनों पैर पसार कर खड़े हुए पुरुषके आकार है। इसमें ऊपरके भागको ऊर्ध्वलोक, बीचके भागको

लोकाकाशका आकार।



मध्य लोक और नीचेके भागको पाताल लोक कहते हैं। ऐसे ऊर्ध्व, मध्य और पाताल तीनों लोक और अलोक शुद्ध ज्ञानमें बिना प्रयत्न प्रतिबिम्बित होते हैं। ज्ञानका ईश्वर शुद्ध आत्मा लोकअलोक-का ज्ञायक है। उस आत्माका तत्त्वदर्शी लोग सदा अनुभव करते हैं और वे ज्ञानी अर्थात् पंडित लोग ज्ञान ही के जलसे सदा स्नान करते हैं जिससे सदा पवित्र रहते हैं और सांसारिक संताप उनसे दूर होता है। वे सदा शांतिके सरोवरमें आनंद करते हैं ॥ १० ॥

सम्यक्तस्य जलं शुद्धं, संपूर्णसरपूरितं ।
स्नानं पिवत गणधरनं, ज्ञानं सरनंतं ध्रुवं ॥११॥

अर्थः—सम्यग्दर्शन रूपी शुद्ध जल ज्ञान सरोवरमें भरा हुआ है, गणधर उसीमें नहाते हैं। सम्यग्ज्ञान ही अविनाशी व अनन्त सरोवर है ।

भावार्थः—आत्मस्वरूपके सच्चे श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। जब श्रद्धानमें शंकादि व चलमल अगाढ़ दोष नहीं रहते हैं तब सम्यग्दर्शन निर्मल होता है, यही मानो सम्यग्ज्ञान रूपी सरोवरमें जल भरा हुआ है। यह ज्ञानका सरोवर बहुत गंभीर और शांति पूर्ण होता है। गणधर अर्थात् मुनि समूहके प्रधान आचार्य आदि इस शुद्ध सम्यक्त्व रूप जलसे भरे हुए ज्ञानके तालाबमें स्नान करते हैं और राग-द्वेष रूप मलको नष्ट करते हैं, निर्मल और शान्ति पूर्ण ज्ञानके आनंदका अनुभव करते हैं। यह सम्यग्ज्ञानका सरोवर ग्रीष्मकाल आदिमें सूख जावे अथवा अनावृष्टि आदिसे रीता हो जावे ऐसा नहीं है, वरन सदा शाश्वत, चिरस्थाई और अथाह है तथा अनंत काल तक रहेगा ॥ ११ ॥

शुद्धात्मा चेतनाभावं, शुद्धदृष्टिसमं ध्रुवं
शुद्धभावथिरीभूत्वा, ज्ञानं स्नान पंडिता ॥१२॥

अर्थः—शुद्धात्मा चेतना भावरूप है, वह सदा शुद्ध सम्यक्त्वरूप ही है। इस शुद्ध भावमें जो स्थिर होते हैं वही पंडितोंका ज्ञान स्नान है।

भावार्थः—ज्ञान और दर्शन आदिको चैतन्यभाव कहते हैं। यह चैतन्यभाव आत्माका प्रधान धर्म है और इस चैतन्य धर्म सम्पन्न आतमरामकी भले प्रकार प्रतीति हो जाना सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन आत्माका निज स्वभाव है। सदा आत्माके साथ ही रहना है इसलिये नित्य, अविनाशी और अक्षय है। पंडित लोग आत्माके इस सम्यग्दर्शन रूप शुद्ध रूप भावमें स्थिर होकर विश्राम करते हैं, यही उनका ज्ञानके सरोवरमें विराजमान होना है। स्नानमें स्थिर पद दिया है। इससे यह सूचित होता है कि नहानेके समय जिस प्रकार हाथ पैर आदि चलाये जाते हैं और पानी चंचल होता है ऐसा ज्ञानके स्नानमें नहीं है। ज्ञानका स्नान चित्तकी चंचलता और राग-द्वेष आदि संकल्प विकल्प रहित होता है। सरोवरके स्नान करने और हाथ पैर आदि चलाने व शरीर आदिके मलनेसे बाह्य मल क्षय हो जाता है और किंचित् कालमें फिर जम जाता है, परन्तु इस अनुपम और अद्वितीय स्नानमें आत्माके अंतरंग मल, हलन-चलनका परिश्रम किये बिना ही धुल जाते हैं तथा चित् चमत्कार रूप आतमराम सदाके लिये निर्मल हो जाता है, उस पर फिर कर्म मल नहीं लगता॥ १२॥

प्रक्षालितं त्रति मिथ्यात्वं, शल्यं त्रियं निकंदनं।
कुज्ञानरागदोषं च, प्रक्षालितं अशुभभावना ॥१३॥

अर्थः—इस ज्ञानरूपी जलसे तीन प्रकारका दर्शन-मोह धुल जाता है। माया मिथ्या निदान तीन शल्य निकल जाते हैं। कुज्ञान व राग-द्वेष तथा अशुभ भावनायें सब धुल जातीं हैं।

भावार्थः— ज्ञानावरणीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र ये आठ कर्म हैं। इन आठ कर्मों में मोहनीय कर्म प्रधान है। उसके दो भेद हैं-एक दर्शन मोहनीय और दूसरा चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय आत्माके दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व गुणको घातता है और चारित्र मोहनीय अर्थात् कषायें आत्माके चारित्र गुणको नष्ट करतीं हैं। दर्शन मोहनीयके मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति ये तीन भेद हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवके अतत्त्व श्रद्धान हो, उसको मिथ्यात्व कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे मिले हुए परिणाम हों, जिनको न तो सम्यक्त्व रूप कह सकते हैं और न मिथ्यात्व रूप, उसको सम्यक्मिथ्यात्व कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे सम्यक्त्व गुणका मूल घात तो न हो परन्तु चल मलादि दोष उपजें, उसको सम्यक्प्रकृति कहते हैं। तीनों प्रकारका

मिथ्यात्व मल सम्यग्ज्ञान सरोवरमें भरे हुए सम्यक्त्व रूप जलसे स्नान करने पर धुल जाता है।

शल्य शब्दका अर्थ कांटा है। जो आत्मामें कांटेके सामान चुभते हैं ऐसे माया, मिथ्यात्व और निदान ये तीन शल्य हैं। छल, कपट अर्थात् मनमें कुछ और, कहें कुछ और, करें कुछ और, ऐसी विभावपरिणति को माया कहते हैं। अतएव ऐसे श्रद्धानको मिथ्यात्व कहते हैं। आगामी विषय वासनाओंकी सामग्रीकी वांछाको निदान कहते हैं। ये तीनों शल्य सम्यग्ज्ञान सरोवरमें भरे हुए सम्यक्त्व रूप जलमें स्नान करनेसे धुल जाते हैं।

ज्ञान आत्माका प्रधान गुण है और संसारी छद्मस्थ आत्मा पर ज्ञानावरणीय कर्मका परदा पड़ा हुआ रहता है जिससे ज्ञानगुण ढक जाता है, परन्तु यह परदा इतना प्रबल नहीं होता कि आत्माका ज्ञानगुण सर्वथा नष्ट ही हो जावे अर्थात् कुछ रहता ही है। जब तक सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता तब तक वह ज्ञान कुज्ञान कहलाता है और वह कुमति, कुश्रुति और कुअवधि रूप रहता है। यह तीनों प्रकारका कुज्ञान सम्यग्ज्ञान रूप सरोवरमें भरे हुए सम्यक्त्व रूप जलसे स्नान करने पर धुल जाता है। शुद्ध और चिच्चमत्कार रूप आत्मा कर्मके झकोरोंसे चतुर्गति संसारमें संसरण करता हुआ अपने स्वरूपको विस्मरण करके

संसारके अनित्य व क्षणभंगुर पदार्थों में अहंबुद्धि करता है, यह मोह है। और संसारके चेतन–अचेतन पदार्थों में मुहब्बत करना राग है तथा उनसे नफरत करना द्वेष है। ये तीनों अर्थात् मोह, राग, द्वेष सम्यग्ज्ञान रूप सरोवरमें भरे हुए सम्यक्त्व रूप जलसे स्नान करने पर धुल जाते हैं ॥ १३ ॥

कषायं च अनंतानं, पुण्यपापप्रक्षालितं।
प्रक्षालितं कर्म दुष्टं च, ज्ञानं स्नानपंडिता ॥१४॥

अर्थः–अनन्त अनुभाग[1] शक्तिको रखनेवाले क्रोधादि कषाय तथा पुण्य व पाप सब धुल जाते हैं। दुष्ट कर्म भी जिससे बह जाते हैं, ऐसा पंडितोंका स्नान है।

भावार्थः–इस ज्ञान स्नानसे विद्वान लोगोंके क्रोध, मान, माया, लोभ ये चारों कषाय और हास्य, रति, अरति, शोक, भय, ग्लानि, पुंवेद, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद ये नो कषायें अथवा इनके अनन्त अनुभाग धुल जाते हैं। यहां श्लोकमें कषायोंके साथ अनंत शब्द दिया है सो कर्मों में अनुभाग शक्ति अथवा वर्गणाओंकी संख्याकी दृष्टिसे दिया है। ज्ञानके

१- विपाकोऽनुभवः। अर्थात्–कर्मकी फल देनेकी हीनाधिक सामर्थ्यको अनुभाग कहते हैं। सो कषायें तीव्रतर, तीव्रतम, मंदतर, मंदतम, आदि अनेक अनुभाग लिये हुए रस देती हैं। उनके अनेक अध्यवसाय होते हैं, जो संख्यामें अनंत हैं।

स्नानसे पुण्य-पाप धुल जाते हैं । अशुभ परिणतिको पाप और शुभ परिणतिको पुण्य कहते हैं। अशुभ परिणतिमें कषायका तीव्र और शुभ परिणतिमें कषायका मंद उदय रहता है। इसलिये दोनों आस्रव हैं और बंधकी परंपराको बढ़ाते हैं। समयसारजीमें कहा है—

जैसें काहू चंडालो जुगल पुत्र जनें तिनि,
एक दीयौ बांभनकैं एक घर राख्यौ है।
बांभन कहायौ तिनि मद्य मांस त्याग कीनौ,
चंडाल कहायौ तिनि मद्य मांस चाख्यौ है॥
तैसें एक वेदनी करमके जुगल पुत्र,
एक पाप एक पुन्न नाम भिन्न भाख्यौ है।
दुहूं मांहि दौरधूप दोऊ कर्मबंधरूप,
यातें ग्यानवंत नहि कोउ अभिलाख्यौ है॥

शुद्धोपयोगमें रमण करनेसे शुभ व अशुभ भाव नहीं होते हैं। आत्माकी विशुद्धि पाना ही पंडितोंका ज्ञानस्नान है, वही कर्म मल धोनेमें समर्थ है ॥ १४ ॥

प्रक्षालितं मन चंचलं, त्रविधि कर्म प्रक्षालितं ।
पंडितो वस्त्रसंयुक्तं, आभरनं भूषण क्रियत्ते ॥१५॥

अर्थः—चंचल मन भी धुल जाता है तथा तीन

प्रकारके कर्म द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्म भी धुल जाते हैं। तब पंडित आत्मा वस्त्र पहिनता है व आभूषणोंसे सुशोभित होता है।

भावार्थः—इस ज्ञान स्नानसे चंचल मन जो राग-द्वेष-मोहसे दूषित रहता है, सदा विषय-कषायोंकी ओर झुकता है, कर्म बन्धमें प्रधान कारण है, जिसको वशमें करनेके लिये साधु लोग कायक्लेश करते और आसन प्राणायाम आदि अष्टयोग धारण करते हैं व वनमें निवास करते अथवा तीर्थों पर भटकते हैं सहजमें उज्ज्वल और स्थिर हो जाता है। समयसारजीमें कहा है—

धायौ चहूं ओर पै न पायौ कहूं सांचौ सुख,
रूपसौं विमुख दुखकूपवास बसा है।
धरमकौ घाती अधरमकौ संघाती महा,
कुरापाती जाकी संनिपातकीसी दसा है॥
मायाकौं झपटि गहै कायासौं लपटि रहै,
भूल्यौ भ्रम-भीरमें बहीरकौसौ ससा है।
ऐसौ मन चंचल पताकाकासौ अंचल सु,
ग्यानके जगेसौं निरवाण पथ धसा है॥

इस ज्ञान स्नानसे द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म ऐसे

तीनों प्रकारके कर्म धुल जाते हैं। आत्माके ज्ञानादि गुणोंको ढंकनेवाले सर्वात्मप्रदेशों पर पड़े हुए ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय आदि अष्टकर्मों के पिंडको द्रव्यकर्म कहते हैं। राग-द्वेष-मोह रूप आत्माकी विभावपरिणतिको भावकर्म कहते हैं। औदारिक वैक्रियक आदि शरीरको नोकर्म कहते हैं।

ज्ञान स्नानसे चंचल मन और द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीनों प्रकारके कर्म धुल जाते हैं अर्थात् सिद्ध पद प्राप्त होता है। और स्नानके उपरान्त वस्त्र व आभूषण पहिने जाते हैं, सो वह ज्ञानी ज्ञान स्नानके उपरान्त सद्भाव रूपी वस्त्र और रत्नत्रयरूपी आभूषण पहिनता है। इस भावको आगेके श्लोकमें प्रगट करते हैं ॥ १५ ॥

वस्त्रं च धर्मसद्भावं, आभरणं रत्नत्रयं ।
मुद्रका सम मुद्रस्य, मुकुटं ज्ञानमयं ध्रुवं ॥१६॥

अर्थः—पंडितका वस्त्र आत्माका सत्भाव रूपी धर्म है, रत्नत्रय उसका आभूषण है, समताभाव रूपी मुद्रा मुद्रिका है व ज्ञानमई अविनाशी मुकुट है।

भावार्थः—आत्माके सद्भाव तत्त्वज्ञान, भेदविज्ञान, वीतरागता आदि हैं। ये ही आत्माके निजधर्म हैं और पंडित पूजा करनेवाले विद्वानके वस्त्र हैं। रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये सबसे अनमोल

तथा अनुपम रत्न हैं। आत्मश्रद्धानको सम्यग्दर्शन, आत्मज्ञानको सम्यग्ज्ञान और संपूर्ण विकल्प जालसे विमुक्त होकर आत्मस्वरूपमें निश्चल विश्राम लेनेको अर्थात् आत्माके आत्मा हीमें तल्लीन होनेको सम्यक्चारित्र कहते हैं। ये ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप तीन रत्न सच्चे आभूषण हैं। संपूर्ण चेतन-अचेतन पदार्थोंसे राग-द्वेष-मोह छोड़कर संसारमें सब रूपी-अरूपी द्रव्योंमें एकसी वृत्ति रखनेको समताभाव कहते हैं। यही समताभाव पंडित पूजा करनेवाले विद्वानकी रत्नमुद्रिका है। नय निक्षेप और भेदविज्ञानके द्वारा जीवाजीव पदार्थोंका निर्णय करके अपने आत्मस्वरूपकी परख कर लेना सम्यग्ज्ञान है। यही सम्यग्ज्ञान पंडित पूजा करनेवाले विद्वानके मस्तक पर मुकुटके समान सुशोभित होता है। यह ज्ञानका मुकुट आत्माका निज स्वभाव होनेके कारण कभी नष्ट नहीं होता। शरीर धन सम्पत्ति आदि क्षणभंगुर सम्पदाओंके समान यह कभी आत्मासे पृथक् नहीं होता। आत्माका निजस्वभाव होनेके कारण सदा उसके साथ रहता है। इसलिये अविनाशी और स्वयं सिद्ध है। पंडित पूजा करनेवाले विद्वानोंको चाहिये कि वे समीचीन भावोंके वस्त्रको धारण करें, रत्नत्रयके आभूषणोंसे सुशोभित होकर निजात्मदेवकी पूजा करके अपनेको पवित्र करें।

दृष्टतं शुद्ध दृष्टी च, मिथ्यादृष्टि च त्यक्तयं ।
असत्यं अनृतं न दृष्टंते, अचेत दृष्टि न दीयते ॥१७॥

अर्थः—जहां शुद्ध दृष्टि दिखलाई पड़ती है, मिथ्यादृष्टि चली गई है, असत्य भाव जहां नहीं दिखता न जहां अचेत दृष्टि या अज्ञान दृष्टि दिखलाई पड़ती है।

भावार्थः—जहां मिथ्या भाव नहीं रहता और सच्चा श्रद्धान प्रगट होता है उसमें शंका—कांक्षा आदि पच्चीस दोप व चल—मल आदि दोष नहीं रहते और जहां असत्य भावका लेश भी नहीं रहता है वह अपने स्वरूपमें सदा सावधान रहता है। संशय, विमोह, विभ्रम आदि उसके ज्ञानमें नहीं रहते ॥ १७ ॥

दृष्टतं शुद्ध समयं च, सम्यक्त्वं शुद्धं ध्रुवं ।
ज्ञानं मयं च संपूर्ण—ममलदृष्टि सदा बुधैः ॥१८॥

अर्थः-वहां शुद्ध समय अर्थात् आत्मा दिखाई पड़ता है या अविनाशी शुद्ध सम्यक्त्व दिख पड़ता है व पूर्ण ज्ञान दिखता है। बुद्धिमानोंको वहां निर्मल दृष्टि दिखलाई पड़ती है।

भावार्थः—समय नाम आत्माका है और समय नाम सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्रका है, सो ज्ञान स्नान करनेवाले पंडितके रत्नत्रय आदि गुण प्रगट होनेसे उसका आत्मा शुद्ध हो जाता है। अर्थात् क्षुधा-तृषा आदि अठारह दोष अथवा

ज्ञानावरणीय आदि अष्ट कर्मकी कालिमा नहीं रहती और उसका सम्यग्दर्शन[1] अविनाशी अर्थात् क्षायिक भावको प्राप्त होता है। अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति ये सात कर्म प्रकृतियां जीवके सम्यक्त्व भावका घात करती हैं, सो ज्ञान स्नान करनेसे वे समूल नष्ट हो जातीं हैं और मिथ्यात्वका सत्व सर्वदाके लिये हट जाता है। फिर कभी इन सात प्रकृतियोंका बंध नहीं होता, इससे सम्यक्त्व क्षायिक कहलाता है। इस क्षायिक सम्यक्त्वमें शंकादि दोष नहीं होते। शुद्ध सम्यक्त्व प्रगट होता है और इसीलिये आचार्यने अविनाशी और शुद्ध पद सम्यक्त्वके साथ दिये हैं। ज्ञान स्नान करनेवाले पंडितका सम्यक्त्व शुद्ध व क्षायिक होनेसे व आत्मा निर्विकार होनेसे समय पाकर ज्ञानावरणीका आवरण हट जाता है और वह पूर्णज्ञान अर्थात् केवलज्ञानको प्रगट करता है। वहां विद्वान लोगोंको निर्मल दृष्टि अर्थात् सच्चा श्रद्धान ही श्रद्धान दिखाई देता है अर्थात् ज्ञान है सो भी श्रद्धान है, चारित्र है सो भी श्रद्धान है, आत्माकी शुद्धता है सो भी श्रद्धान है भाव यह है कि सब सद्गुणोंका सच्चा श्रद्धान है॥ १८॥

१-सम्यग्दर्शन तीनप्रकारका होता है उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक।

लोकमूढं न दृष्टंते, देव पाखंड न दृष्टते।
अनायतन मद अष्टं च, शंकादि अष्ट न दृष्टते ॥१८॥

अर्थः- न वहां तीन मूढ़ता अर्थात् लोक, देव व पाखंड मूढ़ता दिखती हैं, न वहां छह अनायतन हैं, न आठ मद हैं, न शंकादि आठ दोष दिखते हैं।

भावार्थः—सम्यग्दर्शनको मलिन करनेवाले निम्नलिखित पच्चीस दोष हैं—

तीन मूढ़ता- (१) लोक मूढ़ता—शास्त्रकी मर्यादा का तथा अपने हानि—लाभका विचार न करके अज्ञान मनुष्योंकी देखा-देखी कार्य करना लोक मूढ़ता है। जैसे—सूर्यको अर्घ देना, गंगा स्नान, देहली पूजन आदि।

(२) देव मूढ़ता—किसी प्रकारके वरकी वाञ्छा करके रागी—द्वेषी देवोंकी उपासना करना, उन्हें पाषाण आदिमें स्थापन करना—पूजना देव मूढ़ता है।

(३) पाखंड मूढ़ता—आरंभ परिग्रहके धारक, हिंसादि पापोंमें प्रवर्तनेवाले, विषयानुरागी पाखंडी—भेषियोंको गुरु जानना और उनका आदर—सत्कार करना पाखंड मूढ़ता या गुरु मूढ़ता है।

षट् अनायतन—कुगुरु, कुदेव, कुधर्म तथा इनके सेवकोंको धर्मके स्थान समझकर उनकी स्तुति—प्रशंसा करना

अर्थः—जो वेद या ज्ञानको अग्र करके उसमें स्थिर होता है तथा सर्व परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ व अविनाशी तीन लोकको जाननेवाले शुद्ध आत्माको वेदता है, अनुभव[1] करता है, वही वेद वेदांतका ज्ञाता पंडित है।

भावार्थः-आत्मा ज्ञानका पिंड है। नित्य और अविनाशी है, सकल ज्ञेयको ज्ञायक है। मिथ्यात्व राग—द्वेष आदि अंतरंग परिग्रह और धन-धान्य आदि बाह्य परिग्रहोंसे रहित है। सो जो ज्ञानी आत्माके ज्ञानगुणको प्रधान करके उसमें विश्राम लेते हैं और सम्पूर्ण विकल्प जालसे विमुक्त होकर अपने स्वरूपके आत्मीयरसका आस्वादन करते हैं वे ही द्वादशांग अथवा प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग इन चतुर्वेद अथवा अंगबाह्य वेदान्तका ज्ञाता है। यहां यह स्पष्ट किया है कि यदि जीव आचारांगादि ग्यारह अंग और उत्पाद अग्रायणी आदि चौदह पूर्व तथा अंग बाह्य श्रुतज्ञानका ज्ञाता हो जावे, पंचास्तिकाय, छहद्रव्य, साततत्त्व, नवपदार्थके स्वरूपको जानता हो। परन्तु अपने आनन्दकन्द विज्ञानघन परमदेवको नहीं पहिचानता हो तो उसका सब ज्ञान पुस्तकके भावरूप ही होता है। उसे परमागममें मिथ्यादृष्टि कहा है। प्रयोजन यह है कि क्षयोपशमके

१- वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम॥ नाटक समय०।

अनुसार नय ज्ञानके द्वारा आत्मा अनात्माका भेदविज्ञान करके चैतन्यमूर्ति और परिणामी आतमरामके परिणमनकी परख करना चाहिये और निज स्वरूपका भले प्रकार निश्चय करके उसमें तल्लीन होना चाहिये ॥ २१ ॥

उच्चारण ऊर्ध शुद्धं च, शुद्ध तत्वं च भावना ।
पंडितो पूज आराध्यं, जिन समयं च पूजतं ॥२२॥

अर्थः-ऊर्ध्वस्वभावमें तिष्ठनेवाले शुद्ध आत्माका जो उच्चारण करना है व शुद्ध तत्त्वकी भावना करना है वही आराधने योग्य पंडित पूजा है, उसीने जिन समय अर्थात् जिनवाणीको पूजा है।

भावार्थः—शुद्ध आत्मा तीन लोकके अग्र विराजमान होता है। उसका उच्चारण करना तथा आत्माका अनुभव करना ही पंडित पूजा है। जिसने आत्मानुभव पाया है उसीने यथार्थ जिनवाणीकी पूजा की है। कहा भी है—

जब चेतन संभारि निज पौरुष,
निरखै निज दृगसौं निज मर्म ।
तब सुखरूप विमल अविनासिक,
जानै जगत सिरोमनि धर्म ॥

अनुभौ करै सुद्ध चेतनकौ,
रमै स्वभाव वमै सब कर्म ।
इहि विधि सधै मुकतिकौ मारग,
अरु समीप आवै सिव सर्म[1] ॥

और भी–

अलख अमूरति अरूपी अविनाशी अज,
निराधार निगम निरंजन निरंध है ।
नानारूप भेस धरै भेसकौ न लेस धरै,
चेतन प्रदेश धरै चेतनकौ खंध है ॥
मोह धरै मोहीसौ विराजै तोमैं तोहीसौ ।
न तोहीसौ न मोहीसौ न रागी निरबंध है ॥
ऐसौ चिदानंद याही घटमें निकट तेरे,
ताहि तू विचारु मन और सब धंध है ॥

(समयसार नाटक)

पूजतंच जिनं उक्तं, पंडितो पूजतो सदा ।
पूजतं शुद्ध सार्धं च, मुक्ति गमनं च कारणं ॥२३॥

१. शर्म = आनंद ।

अर्थः–उसीने कहे हुए आत्म–जिनको पूजा है जिसने सदा पंडित पूजा की । उसीने शुद्धात्माको पूजा है । यही पूजा मुक्तिके जानेका कारण है ।

भावार्थः–पूजा नाम आदर सत्कार करनेका है, अपने शुद्ध बुद्ध आत्माका अनुभव करना यही निजात्मदेवकी पूजा है । यहां आत्मा ही पूज्य है, आत्मा ही पूजक है और आत्म-स्वरूपमें विश्राम करना पूजा है । पूजा, पूज्य और पूजकमें वस्तु भेद नहीं है । राग-द्वेष-मोह रहित आत्मा ही जिन है तथा उसमें लीन होकर रहना जिनदेवकी पूजा है और वह मोक्ष पदार्थको देनेवाली है । यहां पूजा कारण है और मोक्ष कार्य है । समर्थ कारण वही है जिससे कार्यकी सिद्धि नियम पूर्वक होती है । सो यह आत्मरूप जिनदेवकी पूजा नियमसे मोक्षरूप कार्यकी सिद्धि देती है । भाव यह है कि जो बुद्धिमान आत्मपूजा रूप करते हैं वे अवश्यमेव परम धामको प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २३ ॥

अदेवं अज्ञान मूढं च, अगुरुं अपूज्य पूजनं ।
मिथ्यात्वं सकल जानंते, पूजा संसार भाजनं ॥२४॥

अर्थः–जो देव नहीं है उसकी पूजा व जो अज्ञानी व मूर्ख है व सच्चा गुरू नहीं है किन्तु अपूज्य है उसकी पूजा, उसको मिथ्यात्व जानना चाहिये, ऐसी पूजा संसारको बढ़ानेवाली है ।

भावार्थः–वीतराग और सर्वज्ञ आत्मा ही देव हैं, इसके सिवाय अन्यत्र देवपना नहीं हो सकता, सो वीतराग सर्वज्ञ देवके सिवाय अन्य किसीकी पूजा–उपासना करना मूर्खता है। और जो परम पदकी प्राप्तिके मार्ग पर यथार्थ चलता हो व चलाता हो उसको गुरू कहते हैं सो सम्यग्ज्ञान मई आत्मा ही परम गुरू है, ऐसे परम गुरूके सिवाय अन्य किसीकी सेवा–पूजा करना मिथ्यात्व है जो अनंत संसारको बढ़ानेमें समर्थ है–

जे राग–द्वेष मलकरि मलीन,
वनिता गदादिजुत चिह्न चीन ।
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव,
शठ करत न तिन भवभ्रमण छेव ॥
राग द्वेष जुत देव, मानै हिंसा धर्म पुनि ।
सग्रंथ गुरू की सेव, सो मिथ्याती जग भ्रमै ॥२४॥

इत्यादि उपदेश हैं ।

तेनाहं पूज शुद्धं च, शुद्धतत्वप्रकाशकं ।
पंडितो वंदना पूजा, मुक्तिगमनं न संशयः ॥२५॥

अर्थः–इसलिये मैं शुद्ध तत्त्वको प्रकाश करनेवाले शुद्ध आत्माको पूजता हूँ यही पंडित वंदना या पूजा

मुक्तिका मार्ग है इसमें संशय नहीं है।

भावार्थः—जिन आगममें सात तत्व कहे हैं उनमें जीव और अजीव ये दो तत्त्व मुख्य हैं, शेष पांच तो इन जीव-अजीवके विशेष हैं। सात तत्त्वोंमें से मुख्य जीव-अजीव तत्त्वोंमें जीव तत्त्व प्रधान है। उसमें चेतना गुण है और वह स्वपरका ज्ञायक है। इसलिये आत्मा अपना और सब तत्त्वोंका प्रकाशक है। उसकी वंदना या पूजा करना अर्थात् आत्म-स्वरूपका अनुभव करना पंडित वंदना और पंडित पूजा है और यही कर्म-बन्धनसे मुक्त होने अर्थात् मोक्ष पानेका उपाय है, इसमें तिल मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये—

भैया जगवासी तू उदासी ह्वैकैं जगतसौं,
एक छै महीना उपदेस मेरौ मानु रे।
और संकलप विकलपके विकार तजि,
बैठिकैं एकंत मन एक ठौरु आनु रे॥
तेरौ घट सर तामैं तूही है कमल ताकौ,
तूही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे।
प्रापति न ह्वै है कछु ऐसौ तू विचारतु है,
सही ह्वै है प्रापति सरूप यों ही जानु रे।

इत्यादि कथन अन्य ग्रन्थकारोंने किया है।

प्रति इन्द्रि परि पूर्णस्य, शुद्धात्मा शुद्ध भावना।
शुद्धार्थं शुद्ध समयं च, प्रति इन्द्रं शुद्ध दृष्टितं ॥२६॥

अर्थः—इन्द्र जो आत्मा सो अपने गुणोंसे पूर्ण है वही शुद्धात्मा है उस शुद्ध स्वरूपकी भावना करनी चाहिये। वही शुद्ध अर्थ है, वही शुद्ध समय है, वही शुद्ध इंद्र देखा गया है।

भावार्थः—आत्माके ज्ञान, दर्शन, सुख, सत्ता, वीर्य आदि अनन्तगुण हैं, परन्तु अनादिकालसे इसको अविद्याने घेरा है। इस अविद्याके कारण वह अनन्त गुणात्मक आतमराम अपने स्वरूपसे चिगकर पर पदार्थोंमें अहंबुद्धि करता है और राग-द्वेष रूप विभाव परिणतिमें परिणमन करता है तथा अपने शुद्ध बुद्ध परमात्माकी भावनाको विस्मरण करता है। यह उससे एक भारी भूल होती है। जिसके फलस्वरूप अनन्त कर्मवर्गणा रूप पुद्गल पिण्ड उस आत्माके प्रत्येक प्रदेश पर आचिपकते हैं उन्हें कर्म कहते हैं। इन कर्मोंके विपाकसे इस आतमरामके ज्ञानादि अनन्तगुण ढंक जाते हैं। यदि वह अपनी शक्तिको सम्हाले और जिनेश्वरी विद्याका पठन-पाठन मनन करके अपने स्वरूपमें स्थिर होवे तो उसके अव्यक्त[1] सम्पूर्ण गुण व्यक्त[2] हो जाते हैं, ऐसी अवस्थामें वह इन्द्र कहलाता है। वही शुद्ध पदार्थ है, वही शुद्ध समय है, उसी शुद्ध स्वरूपका चिंतवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

१- अप्रगट। २- प्रगट।

दातारो दान शुद्धं च, पूजा आचरण संयुतं ।
शुद्ध सम्यक्त्व हृदयं यस्य, स्थिरं शुद्ध भावना ॥२७॥

अर्थः—वही अपने आत्माको शुद्ध दानका देनेवाला है, जो उसीकी पूजा व आचरणमें लगा हुआ है । जिसके हृदयमें शुद्ध सम्यग्दर्शन हो व जहां शुद्ध स्थिर भावना हो ।

भावार्थः—यहां पूजाको दानमें समावेश किया है । स्वामी समंतभद्राचार्यजीने भी श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारजीमें पूजाको दानके प्रकरणमें लिखा है । विशेष इतना है कि, रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें व्यवहारनयकी मुख्यता लेकर कथन किया गया है और यहां निश्चयनयकी प्रधानता है । सो निजात्म देवकी पूजा करना व निज स्वरूपमें लीन होना निजात्माको ज्ञानादि गुणोंका दान देना है । यहां निश्चयनयमें आत्मा ही दाता है, आत्मा ही पात्र है, ज्ञानादि गुणोंकी सामग्री देय है । सो हृदयको सम्यक्त्वादि गुणोंसे पवित्र करके उसीमें विश्राम लेना वास्तविक पूजा व दान है । यही शुद्ध सम्यग्दर्शन है व यही शुद्ध भावना है ॥ २७ ॥

शुद्ध दृष्टी च दृष्टंते, सार्धं ज्ञान मयं ध्रुवं ।
शुद्धतत्वं च आराध्यं, वंदना पूजा विधीयते ॥२८॥

अर्थः—ज्ञानमई अविनाशी शुद्ध दृष्टि ही देखना चाहिये व शुद्ध तत्त्वका आराधन करना चाहिये । उसीकी वंदना

पूजा करना चाहिये ।

भावार्थः—आत्मद्रव्य कभी न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है । इसलिये स्वयंसिद्ध, अनादि निधन और अविनाशी है । उसके अनंत गुणोंमें ज्ञानगुण विशेष है इसलिये ज्ञानका पिंड कहा जाता है । उस ज्ञानमई शुद्ध आत्मतत्त्वका श्रद्धान आराधन वंदन पूजन करना उचित है ॥ २८ ॥

संघस्य चत्रु संघस्य, भावना शुद्धात्मनां ।
समयसारस्य शुद्धस्य, जिनोक्तं सार्धं ध्रुवं ॥२६॥

अर्थः—चार संघको भी शुद्ध आत्माकी भावना करना चाहिये । शुद्ध आत्माकी ही शरण लेनी चाहिये, यही सच्चा स्वरूप जिनेन्द्रने कहा है ।

भावार्थः—मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका यह चतुर्विधि संघ जिनागममें कहे हैं । इनका प्रधान लक्षण आत्मज्ञान है । आत्मज्ञानके बिना कोरे क्रियाकांडसे कोई आदमी न श्रावक, श्राविका होते हैं और न मुनि, आर्यिका होते हैं—

ग्रन्थ रचै चरचै सुभ पंथ,
लखै जगमें विवहार सुपत्ता ।
साधि संतोष अराधि निरंजन,
देइ सुसीख न लेइ अदत्ता ॥

नंग धरंग फिरै तजि संग,
छकै सरवंग सुधारस मत्ता।
ए करतूति करै सठ पै,
समुझै न अनातम-आतम-सत्ता।

अपि च—

ध्यान धरै करै इन्द्रिय-निग्रह,
विग्रहसौं न गनै निज नत्ता।
त्यागि विभूति भभूत मढै तन,
जोग गहै भवभोग-विरत्ता॥
मौन रहै लहि मंदकषाय,
सहै बध बंधन होइ न तत्ता।
ए करतूति करै सठ पै,
समुझै न अनातम-आतम-सत्ता॥

सारांश यह है कि जिन आगमसे नय स्वरूपका ज्ञान ग्रहण करके उनके द्वारा आत्मस्वरूपको भले प्रकार पहिचान कर उसीकी शरण ग्रहण करना चाहिये। यद्यपि व्यवहार-नयमें अरहंत आदि पंच परमेष्ठीका शरण कहा है, परन्तु वास्तवमें आपको अपना ही शरण है—

अरहंत सिद्ध गुरु साधु आदि उपकारी।
हैं जिन शासनमें शरण बाह्य विवहारी॥
पर निश्चय नयसे शरण आप अपना है।
यह जानि मोहके ताप नहीं तपना है॥
सार्धं च सप्ततत्वानं, दर्वकाया पदार्थकं।
चेतना शुद्ध ध्रुवं निश्चयं, उक्तं च केवलं जिनं॥३०॥

अर्थः—सात तत्त्व, छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय, नव पदार्थ इनमें एक अविनाशी शुद्ध चेतना ही निश्चयसे सार वस्तु केवली जिनने कही है।

भावार्थः—केवली भगवानने जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्त्व, जीव, पुद्गल, धर्म-अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य, जीव, पुद्गल, धर्म-अधर्म और आकाश ये पांच अस्तिकाय, जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप यह नव पदार्थ कहे हैं। उनमें शुद्ध चेतनाहीको वास्तवमें सार वस्तु बतलाया है—

नाटक समयसारजीमें कहा है—

तजि विभाउ हूजै मगन, शुद्धातम पद मांहि।
एक मोख-मारग यहै, और दूसरो नांहि॥

सात तत्त्वोंमें छहों तत्त्व और अपने आत्माके सिवाय

समस्त जीव राशि हेय है केवल अपना शुद्ध-बुद्ध आत्मा उपादेय ॥ ३० ॥

मिथ्या तिक्त त्रतियं च, कुज्ञानं त्रति तिक्तयं ।
शुद्ध भाव शुद्ध समयं च, सार्धं भव्य लोकया ॥३१॥

अर्थः-तीन प्रकार दर्शनमोहको छोड़कर व कुमति, कुश्रुत, कुअवधि तीन प्रकार कुज्ञानको छोड़कर भव्य जीव शुद्ध भाव व शुद्ध आत्माको ग्रहण करें ।

पहले कह चुके हैं ऐसे तीनों प्रकारके मिथ्या भावको छोड़कर शुद्ध भाव और शुद्ध आत्माको ग्रहण करना चाहिये ।

आत्मा अपने स्वरूपसे केवलज्ञान रूप है परन्तु उसके ऊपर ज्ञानावरणीय कर्मका परदा पड़ा हुआ है और वह आत्माके ज्ञानगुणको घातता है परन्तु ज्ञानावरणीय कर्मका ऐसा सामर्थ्य व स्वभाव नहीं है कि आत्माके गुणको सर्वथा नष्ट कर दे । यदि ऐसा हो तो जीवका चेतनगुण समूल नष्ट हो जाय और वह जड़ हो जाय । अभिप्राय यह कि जीवका ज्ञानगुण कुछ न कुछ व्यक्त रहता ही है और वह मिथ्यात्वकी दशामें कुमति, कुश्रुति और कुअवधि रूप रहता है । जब तक दर्शन मोहनीय त्रिक तथा अनंतानुबंधी चतुष्टयका क्षय, उपशम और क्षयोपशम करके आत्मीक रसका आस्वादन नहीं होता तब तकके मतिज्ञानको कुमतिज्ञान, श्रुतको कुश्रुतज्ञान

और अवधिज्ञानको कुअवधिज्ञान कहते हैं। सो इन तीनों कुज्ञानोंको छोड़कर पूर्ण ज्ञान व पूर्ण आनन्द स्वरूप निजात्माका अनुभव करना चाहिये ॥ ३१ ॥

एतत सम्यक्त्व पूज्यस्य, पूजा पूज्य समाचरेत !
मुक्तिश्रियं पथं शुद्धं, व्यवहार निश्चय शाश्वतं ॥३२॥

अर्थः—इस तरह भले प्रकार पूजने योग्य शुद्ध आत्माकी पूजा करना उचित है, यही व्यवहार व निश्चय मोक्षमार्ग शाश्वत है।

भावार्थः—पाठमें सम्यक् शब्द दिया है इससे यह भाव विदित होता है कि पूजा मन-वचन-कायकी विशुद्धि और तत्त्वज्ञान पूर्वक होना चाहिये। शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र मय शुद्ध आत्मा उपास्य है तथा वही शुद्ध आत्मा उपासक है। अभिप्राय यह है कि अपने ही शुद्ध आत्मदेवकी अपनेहीको पूजा करना उचित है अर्थात् राग-द्वेष-मोहको नष्ट करके वीतराग विज्ञानताको प्राप्त कर लेना ही वास्तविक पूजा है। इसीसे कहा है कि पूजा निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय मोक्षमार्ग तो आत्माका निज स्वरूप ही प्रगट कर लेना है और जो जो निश्चयका साधक होता है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। सो इस भावपूजासे विद्वान लोगोंको निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकारके रत्नत्रयकी सिद्धि कर लेना उचित है। यह निश्चय

और व्यवहार मोक्षमार्ग अनादि कालसे चला आता है तथा अनंत काल तक चिरस्थाई रहेगा ॥ ३२ ॥

पंडित पूजाका सार।

जैन सिद्धान्तका रहस्य है कि संसारमें कर्म बंध सहित जो मलिन आत्मा है उसका कर्म मल हटाया जावे। उसका शुद्ध स्वरूप जैसेका तैसा प्रकाशमान किया जावे। उसको सिद्ध पदमें सुशोभित किया जावे। इस आत्माकी शुद्धिका मार्ग रत्नत्रय धर्म है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको रत्नत्रय कहते हैं। अपने ही आत्माके असली शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान व विश्वास सम्यग्दर्शन है। उसीका संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित बोध सम्यग्ज्ञान है। उसी ही शुद्ध आत्माके अनुभवमें तल्लीन होना अर्थात् उसका ध्यान करना सम्यक्चारित्र है। जब निज आत्माका श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र एक साथ होता है तब आत्मध्यान या समाधिभाव पैदा होता है, यही असली या निश्चय मोक्षमार्ग है।

आत्मा कर्म बन्ध सहित होनेसे नाना भेषोंमें दिखता है। पशु, पक्षी, कीट मनुष्य आदि नाना रूपमें विचित्र कार्योंको करता हुआ दिखाई पड़ता है। यदि थोड़ी देरके लिये ऐसा मान ले कि आत्मामें मानों कर्मका बंध नहीं

है तब हर एक आत्मा शुद्ध सिद्ध परमात्माके समान अविकारी दिखलाई पड़ेगा। सत्ता हरएक आत्माकी भिन्न भिन्न होने पर भी स्वभाव सबका एक समान झलकेगा। सब ही पूर्ण ज्ञान शक्तिके धारी हैं, सर्व ही क्रोधादि कषायोंसे रहित वीतरागी परम शांत हैं। सर्व ही इन्द्रिय रहित अतीन्द्रिय आनन्दके स्वामी हैं, सर्व ही सर्व प्रकारके शरीरोंसे रहित अमूर्तिक हैं। अपने आत्माको परमात्मा तुल्य समझकर विश्वास करना व उसीका ध्यान करना मोक्षका निश्चय या असली मार्ग है। इस आत्मध्यानके जाग्रत करनेके लिये जो जो बाहरी उपाय किये जाते हैं उन सबको निमित्तकारण समझकर व्यवहार मोक्षमार्ग कहा जाता है साधुका चारित्र पालना, परिग्रह परित्याग कर नग्न रहना, चौबीस घन्टेमें एक बार शुद्ध आहार श्रावक द्वारा दिया हुआ लेना, एकान्तवास करना यह सब व्यवहार मोक्षमार्ग है। गृहस्थ योग्य अहिंसादि पांच अणुव्रत पालना, दान व परोपकार करना, जप-तप-स्वाध्याय करना, उपवास करना, पूजा-पाठ, सामायिक, भजन करना यह सब व्यवहार मोक्षमार्ग है। व्यवहार मोक्षमार्गमें वर्तन करना निश्चय आत्मध्यान रूप मोक्षमार्गमें पहुँचनेका सहारा मात्र है। तथापि शुभभाव रूप होनेसे पुण्यबंधका कारण है। कर्मोंकी निर्जरा व मुक्तिका कारण एक आत्मध्यान रूप शुद्ध भाव है। ऐसा समझकर इस पंडित पूजामें पूजकका लक्ष्य एक आत्माकी शुद्ध परिणतिमें

जोड़नेका उपाय किया गया है। किसी भी तरह भाववानको आत्मानुभव प्राप्त हो यही लक्ष्य पंडित पूजाके कर्त्ताका है।

ॐ शब्द अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इस पांच परम पदका वाचक है। व्यवहारसे ये पांच पद हैं। निश्चयसे देखो तो ये सब शुद्ध आत्मा ही हैं। निश्चयनयसे ॐ का अनुभव शुद्ध आत्माका ही अनुभव है। वास्तवमें सच्चा नमस्कार यही है जो अपने शुद्ध आत्माका अनुभव किया जावे। वचनसे स्तुति पढ़ना, कायसे नमना मात्र व्यवहार है। पंडित वही है जो उत्तम बुद्धि मई कार्य करे और सर्वोत्तम कार्य स्वात्मानुभव है इसलिये जो स्वानुभव करता है वही पंडित है। वही अपने आत्मदेवकी स्वानुभव मई आराधना करता हुआ सच्ची देव-पूजा कर रहा है। जिसने आत्माको पहिचाना उसीने ही अरहंत भगवानको पहिचाना है। जो श्रुतकेवली द्वादशांगके पाठी हैं उनका ज्ञान निश्चय श्रुत ज्ञानरूप होता हुआ पांच ज्ञानको एकीभाव करता हुआ आत्मानुभवमें लवलीन है इसलिये श्रुतकेवली ही सच्चे पंडित हैं। वास्तवमें आत्मा अविनाशी दर्शन-ज्ञान मई है इसलिये यथार्थमें वही सच्चा देव है, सच्चा गुरु है व सच्चा शास्त्र है, वही एक अविनाशी सतरूप द्रव्य है। इसीमें स्वभावमई अनन्त बल भरा है।

वास्तवमें स्नानके योग्य कूप, तालाब आदिका हिंसा-

कारक जल नहीं है। इससे आत्माकी स्वच्छता नहीं होती। शुद्ध आत्मिक भावका अनुभव ही सच्चा स्नान योग्य जल है। जो स्वात्मानुभव करते हैं वे ही सच्चा स्नान करते हैं। पंडित जनोंका यही परम रमणीक स्नान है। निर्मल ज्ञानरूपी सरोवर है उनमें आत्मरुचिरूप सम्यग्दर्शन जल भरा है, बड़े बड़े गणधर भी इसी जलमें स्नान करते हैं तथा उनके पीनेके लिये यही जल शुद्ध है। यह ज्ञानरूपी सरोवर कल्पित नहीं है किन्तु अविनाशी है और सीमा रहित अनंत है। जो भव्य जीव इस जलका स्नान करते हैं उनका मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व, सम्यक्‌प्रकृति रूप तीन तरहका दर्शन-मोह वा मल बह जाता है। उनके हृदयमें परम स्वच्छता हो जाती है। माया मिथ्या निदान तीन शल्य भी निकल जाते हैं। मिथ्याज्ञान व रागादि अशुभ भाव सब धुल जाते हैं। सर्व कषायोंको हटानेवाला यहां तक कि कर्मोंके मैलको छुड़ाने-वाला यह अद्‌भुत स्नान है। इस स्नानसे भाव कर्म रागादि, द्रव्यकर्म, ज्ञानावरणादि, नोकर्म शरीरादि सब बह जाते हैं। आत्मा स्वच्छ हो जाता है। यह आत्मज्ञानी पंडित इस तरह पवित्र होकर वस्त्र अलंकारसे अपनेको शृंगारित करता है।

आत्माका सत्‌भावरूपी धर्म ही वस्त्र है जिसको यह पहिनता है, रत्नत्रय मई आभूषणसे अलंकृत हो जाता है। समताभावरूपी मुद्रिका पहिनता है, शुद्ध ज्ञानमई अविनाशी

मुकुटको लगा लेता है। ऐसा ही आत्मा सच्चा पंडित है उसकी मिथ्यादृष्टि सब चली जाती है—उसको निरंतर शुद्ध आत्मीक पदार्थका ही दर्शन होता है। सच्चा सम्यग्दर्शन वहीं पर झलकता है। जहां सम्यक्त्वके भीतर पच्चीस मल दोष कहीं नजर ही नहीं आते हैं, न वहां शंकादि आठ दोष हैं न जाति-कुलादिके आठ मद हैं न लोक मूढ़तादि तीन मूढ़ता हैं न कुदेवादि छह अनायतन हैं।

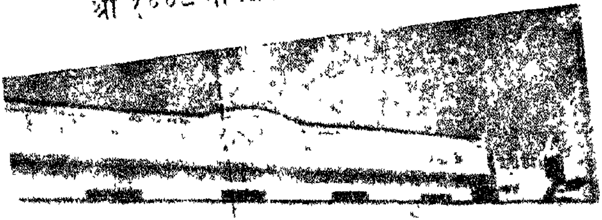
जो वेद अर्थात् आत्मज्ञानमें स्थिर होता है व सर्व ममता मूर्छा छोड़कर परम निर्ग्रन्थ होकर शुद्ध आत्माको वेदता है या अनुभव करता है वही वेदज्ञ पंडित है। शुद्ध आत्माका आराधन करना ही पंडित पूजा है, यही सच्ची जिनवाणीकी पूजा है।

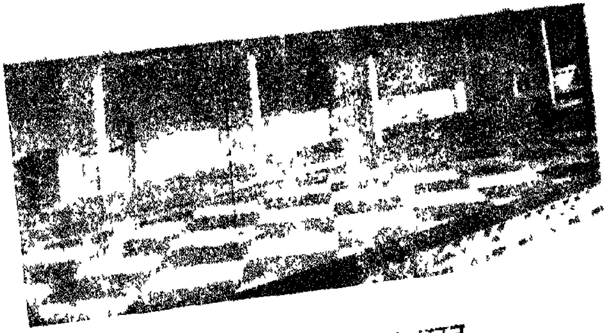
शुद्ध आत्मारूपी देवकी पूजाके लक्ष्यके बिना जितनी पूजा है वह सब मिथ्यारूप है व संसारको बढ़ानेवाली है। सच्चा इन्द्र अपना आत्मा है। मुनि, आर्यिका, श्रावक व श्राविका इन चार संघोंको उचित है कि अपने शुद्ध आत्माका अनुभव करें। क्योंकि छह द्रव्य सात तत्त्व आदिमें सार वस्तु एक अपना शुद्ध आत्मा है इसी आत्माकी निरन्तर पूजा करनी चाहिये यही सच्चा निश्चय मोक्षमार्ग है। आत्मानुभव ही पंडित पूजा है और यही इस पूजाका सार है।

—ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।

माला रोहण

श्री १००८ तीर्थक्षेत्र निसईजी-मल्हारगढ़





श्री तारणतरण स्वाध्याय-भवन

ॐ

श्रीमद् तारनतरनस्वामी विरचित

माला रोहण

भाषा टीका सहित

●

ॐकार वेदांत शुद्धात्म तत्वं ।
प्रणमामि नित्यं तत्त्वार्थ सार्धं ॥
ज्ञानं मयं सम्यक्‌दर्शनोत्थं ।
सम्यक्त्वचरणं चैतन्यरूपं ॥ १ ॥

अर्थः—ॐकार रूप वेदांत शुद्ध आत्मतत्त्व है, वही तत्त्वार्थका सार है। वही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्-चारित्रमई है। वही चैतन्यरूप है। उसको मैं नमस्कार करता हूं।

भावार्थः—ॐ शब्द शुद्ध आत्माका वाचक है, सो ॐकार रूप आध्यात्मिक विद्या शुद्ध आत्मतत्त्व है। यह आत्मतत्त्व जीव, अजीव, आस्रव बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सातों तत्वोंमें प्रधान है। क्योंकि जीव और अजीव अथवा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकश और

काल इन छह द्रव्योंमेंसे सबका ज्ञाता है अर्थात् जीव द्रव्य स्वयं अपनेको जानता है और अपने सिवाय अन्य तत्वों तथा द्रव्योंका ज्ञाता है। इससे सब द्रव्यों और पदार्थोंमें सारभूत व उपादेय है। वह आत्मतत्व ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित है अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आत्माके निज गुण हैं ये आत्मासे पृथक् नहीं हैं और न आत्मा इनसे पृथक् है। ज्ञान और दर्शन अर्थात् देखने-जाननेकी विशाल शक्तिको चैतन्य कहते हैं। यह शक्ति आत्माकी है इसलिमें आत्मा चैतन्यमूर्ति है। उस परम चैतन्यशक्तिके धारक और रत्नत्रयके निधान ॐकार शब्दके वाच्य शुद्ध आत्माको मन-वचन-कायसे शुद्ध होकर सदाकाल नमस्कार करता हूँ।

यहां पहिले श्लोकमें शुद्ध आत्माको स्मरण किया है क्योंकि यह ग्रन्थ अध्यात्म प्रधान है॥ १॥

नमामि भक्तं श्रीवीरनाथं,
नं तं चतुष्टं तं व्यक्त रूवं।
मालागुणं बोच्छं तत्त्वप्रबोधं,
नमाम्यहं केवलि नंत सिद्धं॥ २॥

अर्थः- अनन्त चतुष्टयके धारी व सर्व मलसे रहित भगवान श्री वीरनाथको नमस्कार करता हूं और केवल

स्वरूप अनंत सिद्धोंको नमस्कार करके तत्त्वको जगानेवाली मालाके गुणोंको कहता हूं ।

भावार्थः— अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य इन चार अनंत चतुष्टयके धारक, ज्ञानावरणीय आदि कर्ममल व शरीरमलसे रहित श्री वीरनाथ भगवानको नमस्कार करके इस अध्यात्म गुणोंकी माला अर्थात् गुणोंके समुदायको धारण करनेवाले श्री मालारोहण नामक ग्रंथका कथन करता हूँ ।

इस दूसरे श्लोकमें वर्तमान चतुर्विंशति तीर्थंकरोंमें से अंतिम तीर्थंकर श्री वीर प्रभुका, जिनके शासनसे अब तक जैनधर्मकी उपदेश–परंपरा प्रकाशित है, उनका और सिद्ध परमेष्ठीका स्मरण किया है ॥ २ ॥

कायाप्रमाणं त्वं ब्रह्मरूपं,
निरंजनं चेतनलक्षणत्वं ।
भावे अनेत्वं जे ज्ञानरूपं,
ते शुद्ध दृष्टि सम्यक्त्व वीर्यं ॥ ३ ॥

अर्थः— यह ब्रह्म स्वरूप आत्मा शरीर प्रमाण आकार धारी है, सर्व कर्मरूपी अंजनोंसे रहित है । चैतन्यमल क्षणको रखनेवाला है व ज्ञानस्वरूप है । उसको जो ध्याते हैं वे ही शुद्ध सम्यक्त्वके धारी व सम्यक् वीर्यवान हैं ।

यहां इस अपने शरीरमें स्थित आत्माका स्वरूप निश्चय नयसे बतलाया है यही आत्मा परमब्रह्म स्वरूप है यह सर्व शरीरमें व्यापक है इससे शरीर प्रमाण आकार धारी है। तथापि इसके असंख्यात प्रदेश ज्योंके त्यों हैं। मात्र प्रदेशोंका संकोच हो गया है। निश्चयमें यह आनंदकंद विज्ञानघन परमदेव निरंजन है अर्थात् कर्म-कालिमासे विनिर्मुक्त है। परम चैतन्यचिन्हसे चिन्हित है, वह पूर्ण ज्ञानकी परम ज्योतिसे चमत्कृत है। जो ज्ञानी ऐसे ब्रह्मस्वरूप, चैतन्यमय, ज्ञानके पिण्ड आतमारामका शंकादि दोष रहित श्रद्धान करते हैं व अनुभव करते हैं वे ही शुद्ध सम्यक्त्वके धारक हैं और उनहीका आत्मबल सफल है।

संसार दुक्खं जे नर विरक्तं,
ते समय शुद्धं जिन उक्त दृष्टं।
मिथ्यात्व मद मोह रागादि खंडं,
ते शुद्ध दृष्टी तत्त्वार्थ सार्धं ॥ ४ ॥

अर्थः— जो मानव दुःखमई संसारसे विरक्त हैं वे शुद्ध आत्मा हैं। ऐसा जिनवाणीमें देखा गया है। जो मिथ्यात्व मद मोह व रागादिको नष्ट कर चुके हैं वे तत्त्वार्थसारके ज्ञाता शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं।

भावार्थः— यह चतुर्गति संसार अनेक दुःख मय है।

जन्म, मरण, शोक, ताप, आक्रंदन, बध, बंधन, क्षुधा, तृषा, रोग आदि असीम दुःखोंकी खानि है। कविवर वृन्दावनजीने श्री प्रवचनसारजीमें कहा है—

अशुभोदयतें यह आतमराम,
 कलेश अनंत निरंतर पायौ।
कुमनुष्य तथा तिरयंचनमें,
 बहुधा नरकानलमें पच आयौ॥
नहिं पार परयौ परिवर्तनकौ,
 यह भांति अनादि कुकाल गमायौ।
अब आतम धर्म गहौ सुखकंद,
 जिनंद तथा भविवृन्द बतायौ॥

सो इस पंच परिवर्तन रूप अपार संसारसे भयभीत होने पर संवेगादि गुण उत्पन्न होते हैं, जो सम्यग्दर्शनके प्रधान चिन्ह हैं। और जिनका सम्यग्दर्शन निर्मल होता है वे ही आत्मा शुद्ध हैं क्योंकि उनको शुद्ध आत्माका श्रद्धान व ज्ञान है। जो मिथ्यात्व और उसके सहचारी अनंतानुबंधी कषाय व राग-द्वेष-मोहको नष्ट कर चुके हैं, वे ही तत्त्वार्थके मर्मज्ञ हैं, सच्चे श्रद्धानी हैं तथा निर्दोष सम्यक्त्वके धारक हैं॥ ४॥

शल्यं त्रयं चित्त निरोध नेत्वं,
जिन उक्त वाणी हृदि चेतनेत्वं ।
मिथ्या ति देवं गुरु धर्मदूरं,
शुद्धं स्वरूपं तत्वार्थ सार्धं ॥ ५ ॥

अर्थः– जिसने अपने मनसे माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्योंको दूर कर दिया है, जिनेन्द्रकी वाणीमें कहे अनुसार चेतनपना जिनके हृदयमें है, वे मिथ्या देव, मिथ्या धर्म, मिथ्या गुरुसे दूर हैं। वे ही तत्त्वार्थसारके ज्ञाता शुद्ध स्वरूप मई हैं।

भावार्थः–जो तत्वज्ञानी और शुद्ध श्रद्धानी होते हैं वे माया, मिथ्या और निदान इस शल्यत्रयसे रक्षित रहते हैं।

(१) माया शल्य–जिसके मनके विचार और, वचनकी प्रवृत्ति और, तथा कायकी चेष्टा और हो, ऐसे पापोंको गुप्त रखनेवाले मायाचारी पुरुषका दूसरोंको दिखानेके लिये अथवा मान–लोभादिके अभिप्रायसे व्रत धारण करना निष्फल है। वह ऊपरसे व्रती है परंतु अंतरंगमें उसे पापसे घृणा नहीं, इस कारण ठगवृत्ति होनेसे उसे उलटा पापका बंध होता है।

(२) मिथ्या शल्य–जो धर्मके स्वरूपका ज्ञाता नहीं अर्थात् संसार और संसारके कारणों तथा मोक्ष और मोक्षके

कारणोंको नहीं जानता अथवा विपरीत जानता या सन्देह-युक्त जानता है वह व्रत धारण करनेका अभिप्राय नहीं समझता ऐसा मिथ्यात्वी पुरुष दूसरोंकी देखादेखी या किसी और अभिप्रायसे व्रतोंका पालन करने वाला अव्रती ही है।

(३) निदानशल्य—आगामी ऐहिक सुखोंकी अभिलाषा-को निदान कहते हैं। सो जो पुरुष आगामी सांसारिक विषय—भोगोंकी वांछाके अभिप्रायसे व्रत धारण करता है वह यथार्थमें व्रती नहीं है क्योंकि व्रत धारण करनेका प्रयोजन तो सांसारिक विषयभोगों अथवा आरंभ परिग्रहोंसे विरक्त होकर आत्मस्वरूपमें उपयोग स्थिर करनेका है परन्तु निदान उल्टा बंध करने वाला है। सम्यक्त्वकी निर्मलता तब ही है जब धर्मके श्रद्धानमें भी ये तीन शल्य के दोष न हों।

सम्यग्दर्शनका स्वरूप आचार्योंने कहीं 'आप्तागमतपो-भृत्तां सम्यग्दर्शनं' कहीं 'जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं' कहीं 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' कहीं 'आत्मश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' आदि अनेक प्रकारसे दर्शाया है सो कृपालु और शिष्य हितैषी जैन गुरुओंने अनेक अपेक्षा और प्रयोजनोंको लिये हुए कहा है और अंतमें यही कहा है कि जीवका सम्यग्दर्शन गुण अत्यन्त सूक्ष्म है, वचनसे अगोचर है, पृथ्वी, जल ज्ञान, सुख आदिके समान स्थूल नहीं है। जिस प्रकार अन्धे मनुष्यको घ्राण इन्द्रियके द्वारा आमके हरे और पीले रंगका

बोध सुंघाकर कराया जाता है कि जिसे सूंघनेमें मिष्ट गंध ज्ञात होती है, उसका रंग बहुधा पीला और जिसमें खट्टी गंध आती है वह बहुधा हरा होता है। सम्यक्त्वका कोई स्थूल चिह्न नहीं है। अन्धे मनुष्यके समान शिष्योंको श्री गुरुओंने ज्ञानगुणके द्वारा ही दर्शाया है। और उसी आशयको लिये हुए ग्रन्थ रचियताने कहा है कि सम्यग्दृष्टिके हृदयमें जिनवाणीमें कहे अनुसार चैतन्यपना होता है। कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्रकी सेवा, अनन्त संसारकी परम्पराके कारणभूत मिथ्यात्वको बढ़ानेवाली होती है। सम्यग्दर्शनके अभिलाषी जीव उससे सदा ही दूर रहते हैं ॥ ५ ॥

जे मुक्ति सुक्खं नर कोपि सार्धं
सम्यक्त्व शुद्धं ते नर धरेत्वं ।
रागादयो पुन्य पापाय दूरं,
ममात्मा स्वभावं ध्रुव शुद्ध दृष्टं ॥ ६ ॥

अर्थः--जो कोई मानव मोक्षके सुखका अनुभव करता है वही नर शुद्ध सम्यक्त्वको धरनेवाला है, वह रागादिसे व पुण्य-पापसे दूर है। मेरा आत्मा ऐसा ही स्वभाव वाला है ऐसा निश्चयसे शुद्ध सम्यक्त्वीने जाना है।

भावार्थः-शुद्ध सम्यक्त्वके धारक श्रद्धावान जीव अपने चिच्चमत्कार आत्माका स्वरूप स्याद्वाद विद्याके द्वारा निर्णय

करके अपनेको निर्विकल्प और देहातीत चिंतवन करते हैं। वे निश्चय कर चुके हैं कि मैं सर्वदा मोक्षरूप ही हूँ। शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे आत्मा कभी कर्मोंसे नहीं बंधता और जो बंधा नहीं है वह छूटेगा ही क्या? भाव यह कि आत्मा सदा मोक्षरूप ही है। शुभाशुभ परिणति आत्माकी नहीं है, कर्मजनित है और उसका विपाक पुद्गलमें है। पुण्य--पाप आत्माकी स्वाभाविक परिणति नहीं है-कर्मके सम्बन्धसे हुई है इसलिये पौद्गलिक है, अतः सम्यग्दृष्टि जीव शुभाशुभ परणतिसे सर्वथा विरक्त रहकर अपने स्वरूपमें स्थिर होते हैं। समयसारजीमें कहा है–

मोख सरूप सदा चिनमूरति,
बंधमई करतूति कही है।
जावतकाल बसै जहां चेतन,
तावत सो रस रीति गही है॥
आतमको अनुभौ जबलौं,
तबलौं सिवरूप दसा निबही है।
अंध भयो करनी जब ठानत,
बंध विथा तब फैल रही है॥

भाव यह कि आत्मा सदैव शुद्ध अर्थात् अबंध है और

क्रिया बंधमय कही है। शुद्ध निश्चयनयसे सम्यक्त्वी अपने आत्माको आत्मारूप परम शुद्ध अनुभव करता है तथा वह जब स्वानुभव करता है तब उसको वैसा ही आनन्द आता है जो आनन्द मोक्ष प्राप्त आत्माओंको आता है ॥ ६ ॥

श्रीकेवलं ज्ञानविलोकतत्त्वं,
शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्मतत्त्वं।
सम्यक्त्वज्ञानं चर नंत सौख्यं,
तत्त्वार्थ सार्धं त्वं दर्शनेत्वं ॥ ७ ॥

अर्थः—जिस तत्त्वको केवलज्ञानने देखा है, जिसका प्रकाश शुद्ध है, जो शुद्ध आत्माका स्वरूप है, जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र रूप व अनन्त सुख रूप है वही तत्त्वार्थका सार है उसे तुम देखो !

भावार्थः—लोकालोकके ज्ञायक केवलज्ञानमें सम्पूर्ण द्रव्योंकी सम्पूर्ण कालवर्ती सम्पूर्ण अवस्थाएं बिना प्रयत्न एक ही काल प्रतिबिम्ब होती हैं। उन द्रव्योंमें सबसे सारभूत आत्मद्रव्य है, वह परम चैतन्यज्योतिका धारक है और पूर्ण आनन्दमय है। आत्माके सिवाय अन्य द्रव्य अचेतन हैं, ज्ञान और आनन्द गुणसे वंचित हैं। इसलिये भगवानने सब द्रव्योंमें आतमराम हीको सार बतलाया है और आत्माके सम्पूर्ण गुणोंमें सम्यग्दर्शन प्रधान है, क्योंकि

वह अनन्त कर्म कालिमासे ढंके हुए अनादि गुणोंको निर्मल करनेमें समर्थ है । इससे श्रीगुरु शिष्य समुदायके प्रति सम्बोधन करते हैं कि हे मोक्षाभिलाषी शिष्य ! उस सम्यग्दर्शनके आधारभूत आत्मतत्त्वकी ओर तुम भले प्रकार दृष्टि डालो, वह आत्मतत्व अनंतदर्शन, ज्ञान, वीर्य व सुखरूप है व परम वीतराग है ॥ ७ ॥

सम्यक्त्वशुद्धं हृदयं ममस्तं,
तस्य गुणमाला गुथतस्य वीर्यं ।
देवाधिदेवं गुरु ग्रंथ मुक्तं,
धर्मं अहिंसा क्षमा उत्तमाध्यं ॥ ८ ॥

अर्थः—मेरे हृदयमें शुद्ध सम्यग्दर्शन है । उसकी गुणमाला अपनी शक्ति अनुसार गूंथता हूं । देव देवोंके देव वीतराग भगवान हैं, गुरु परिग्रह रहित हैं, धर्म अहिंसा रूप है जिसके मध्यमें उत्तम क्षमा है ।

भावार्थः—दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधीकी चौकड़ीका उदय न होनेसे निजात्माका अनुभव करनेवाले शुद्ध सम्यग्दर्शनके धारी सम्यग्दृष्टि जीव चिंतवन करते हैं कि मेरे निर्विकार चित्तमें सम्यग्दर्शन निर्मल हुआ है जिसमें मैं भेद-विज्ञान, तत्त्व विचार, निःशंकादि तथा संवेगादि गुणोंकी रत्नमाला सुशोभित करता हूं । वीतराग भगवान जो अनंत

चतुष्टय आदि अंतरंग लक्ष्मी और समवशरणादि बाह्यसंपदाके स्वामी हैं, इन्द्र चन्द्र आदि देवताओंके अधीशोंसे वंदनीय हैं इसलिये देवाधिदेव हैं। ऐसे जिनेन्द्रदेवके सिवाय अन्य कोई इस संसारमें मेरे आत्माका तारक नहीं है। गुरु सकल परिग्रहसे रहित अट्ठाईस मूलगुणके धारक सम्यक् प्रकार मन-वचन-कायके योगोंका निग्रह करनेवाले वीतरागी साधु हैं। और धर्म, त्रैलोक्यकी जीव राशि पर करुणाबुद्धि करनेवाला तथा कर्मास्रवसे रक्षित रखके अपने आत्माकी दया करनेवाला अहिंसामई है। इसकी बीजभूत उत्तम क्षमा है जो सम्पूर्ण राग-द्वेषसे छुड़ाकर विलक्षण शांतिको देनेवाली है॥ ८॥

तत्त्वार्थ सार्धं त्वं दर्शनेत्वं,
मलं विमुक्तं सम्यक्त्व शुद्धं।
ज्ञानं गुणं चरणस्य शुद्धस्य वीर्यं,
नमामि नित्यं शुद्धात्म तत्त्वं॥ ९॥

अर्थः-तुम तत्त्वार्थके सारको देखो, जहां मल रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन है, शुद्ध ज्ञान है, शुद्ध चारित्र है व शुद्ध वीर्य है। वही शुद्ध आत्मतत्व है उसे मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

भावार्थः—जीवादि तत्त्वोंमें चैतन्यगुणका धारी आत्म-तत्त्व श्रेष्ठ है, उसकी ओर दृष्टि डालो! वह आत्मतत्त्व,

चल–मल–अगाढ़ आदि दोषोंसे रहित शुद्ध सम्यग्दर्शनसे सम्पन्न है। संशय, विमोह, विभ्रम, दोष रहित स्वपरका ज्ञायक लोकालोकका प्रकाशक पूर्ण ज्ञानसे संयुक्त है। बाह्य आभ्यंतर क्रियासे विरक्त और क्रोधादि पच्चीस कषायोंको निर्मूल करनेवाला शुद्ध चारित्रसे परिपूर्ण है। और आत्मशक्तिको पराजित करनेवाले वीर्यान्तरायके आवरण सहित अनंत वीर्यसे विभूषित है। ऐसे निर्मल, निर्विकार तथा निज स्वरूपको प्रगट करनेवाले शुद्ध आत्माको नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

जे सप्त तत्वं षट् दर्व युक्तं,
पदार्थ काया गुण चेतनेत्वं ।
विश्वं प्रकाशं तत्वान वेदं,
श्रुत देव देवं शुद्धात्म तत्वं ॥ १० ॥

अर्थः–मैं श्रुतज्ञान रूप शुद्ध आत्मतत्त्वको जानता हूँ, जो सात तत्त्व, छह द्रव्य, नव पदार्थ, पांच अस्तिकायको बतानेवाला है जिसमें चेतनपना है और जो सर्व विश्वको प्रकाश करनेवाला है।

भावार्थः—जीवतत्व, जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व, जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश, काल ये छह द्रव्य, जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप यह नव पदार्थ;

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पांच अस्तिकाय, इन सबका ज्ञायक है, इसलिये श्रुतज्ञान रूप है। पूर्ण ज्ञानी भगवान इन सप्त तत्त्वादिको प्रत्यक्ष जानते हैं और श्रुतज्ञान उनके उपदेशानुसार परोक्षरूपसे जानता है। आत्माका स्वरूप ज्ञान है और उनके मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पांच भेद हैं इसलिये आत्मा व्यवहारनयमें मतिज्ञान रूप भी है, श्रुतज्ञान रूप भी है, अवधिज्ञान रूप भी है, मनःपर्यय ज्ञान रूप भी है और केवलज्ञान रूप भी है। इसलिये आचार्यने आत्माको श्रुतज्ञान रूप कहा है। ज्ञानके सम्पूर्ण आवरणको नष्ट करनेवाले क्षायिक ज्ञानके धारक केवली प्रभु इन जीवादि तत्वोंको प्रत्यक्ष जानते हैं और श्रुतज्ञानके क्षयोपशमकी पराकाष्ठाको प्राप्त होनेवाले श्री श्रुतकेवली परोक्ष रूप केवलीवत् ही जानते हैं। श्री गोम्मटसारजीमें कहा है—

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति।
बोहादो सुद णाणं तु परोक्खं केवलं णाणं ॥

अर्थात् ज्ञानकी अपेक्षा श्रुतज्ञान तथा केवलज्ञान दोनों ही सदृश हैं। परन्तु दोनोंमें अन्तर यही है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवलज्ञान प्रत्यक्ष है।

यह श्रुतज्ञान रूप आत्मा परम चैतन्य रूप और सर्व जगतका ज्ञाता है ॥ १० ॥

देवं गुरुं शास्त्र गुणान नेत्वं,
सिद्धं गुणं सोलाकारणेत्वं ।
धर्मं गुणं दर्शन ज्ञान चरणं,
मालाय गुथतं गुणसस्वरूपं ॥ ११ ॥

अर्थः—मैं गुण मई मालामें देव, शास्त्र, गुरुके गुणोंको, सिद्धोंके गुणोंको, सोलह कारणोंको, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र मई धर्मको गूंथता हूँ ।

भावार्थः—शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे सम्पूर्ण कर्ममलसे रहित दिव्य होनेके कारण अपना आत्मा ही देव है और व्यवहार दृष्टिसे घाति चतुष्कको नाश करनेवाले अरहंत परमात्मा तथा घातिया-अघातिया अष्टकर्मोंको नष्ट करनेवाले सिद्ध परमात्मा देव हैं । अष्टादश दोष रहित, पूर्ण ज्ञानी और हितोपदेशी आप्त परमात्माने जो सर्वांग दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाशित किया है और गणधर आदि महा आचार्योंने द्वादशांग रूप संग्रह किया है, जो वादी प्रतिवादी द्वारा खण्डन करनेमें नहीं आता, तत्त्वोपदेशसे परिपूर्ण है । प्रत्यक्ष और अनुमानसे विरोध रहित है और सब जीवोंको हितकारी है सो श्रुत है । अनंत संसारके संसरणसे भयभीत होकर जिस भव्य आत्माने केवली श्रुतकेवलीके चरण शरणमें आत्म-अनात्मका भेद विज्ञान करके सम्यक्त्वादि गुणोंको निर्मल

किया है वह ज्ञानी आत्मा वास्तवमें गुरु है। और व्यवहार दृष्टिसे बिना प्रयोजन ही जगतके जीवोंका कल्याण करनेवाली दिव्य धाराके द्वारा जो जगतके जीवोंको सन्मार्ग दर्शाते हैं, ऐसे अरहंत परमेष्ठी परम गुरु हैं। और सकल परिग्रहसे रहित रत्नत्रयादि विशिष्ट गुणोंसे सम्पन्न दिगम्बर आचार्य उपाध्याय साधु गुरु हैं।

जिस भाग्यशालीने अनादिकालसे आत्माके सर्वात्म प्रदेशों पर अपरिमित पड़ी हुई कर्मराशिको सर्वथा नाश किया है और जो निश्चय नयसे अनंत गुण तथा व्यवहार नयसे केवलदर्शन, केवलज्ञान, निराबाधत्व, क्षायिक सम्यक्त्व, अवगाहनत्व, अमूर्तित्व, अगुरुलघुत्व और अनंतबल इन आठ गुणोंसे सुशोभित हैं वे सिद्ध परमेष्ठी हैं।

जब कभी उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक सम्यक्त्वका धारक सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थंकर भवस्थितिके सम्मुख होता है तब नीचे कही हुई सोलह भावनाओंका बार बार चिंतवन करता है। वे सोलह भावनाये हैं–

(१) दर्शनविशुद्धता, (२) विनयसम्पन्नता, (३) शील– व्रतेश्वनतीचारता, (४) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, (५) संवेग, (६) शक्तितस्त्याग, (७) शक्तितस्तप, (८) साधु समाधि, (९) वैयावृत्यकरण (१०) अरहंत भक्ति, (११) आचार्य, भक्ति, (१२) बहुश्रुतभक्ति, (१३) प्रवचन भक्ति

(१४) आवश्यकापरिहार, (१५) मार्ग प्रभावना, (१६) प्रवचन वत्सलत्व।

आत्म अनात्मका भेद-विज्ञान करके आत्मस्वरूपमें श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। आत्मस्वरूपका जानना सम्यग्ज्ञान है और आत्मस्वरूपमें लीन होना सम्यक्चारित्र है। सो इन सत्यार्थ देव, शास्त्र, गुरु, सिद्धपरमेष्ठी, सोलह कारणों, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको आचार्यने मालारोहणमें संग्रह किया है अर्थात् जहां आत्मतत्वका अनुभव किया है वहां ही देव, शास्त्र व गुरुके गुण व १६ भावना व रत्नत्रय ये सब पाए जाते हैं ॥११॥

पडमाय ग्यारा तत्वान पेषं,
व्रतान शीलं तप दान चित्तं।
सम्यक्त्व शुद्धं ज्ञानं चरित्रं,
सुदर्शनं शुद्ध मलं विमुक्तं ॥ १२ ॥

अर्थः-इसी मालामें ग्यारह प्रतिमाओंको[1] वीतराग तत्त्वको, व्रतोंको, शीलको, तप व दानको गूंथता हूँ। और मलसे रहित शुद्ध दर्शन व सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रको गूँथता हूं।

१-संयम अंश जग्यो जहां, भोग अरुचि परिनाम।
उदै प्रतिग्याको भयौ, प्रतिमा ताको नाम ॥ ना० स० सा०

भावार्थः—इस पवित्र मालारोहण सद्ग्रन्थमें (१) दर्शन (२) व्रत, (३) सामायिक, (४) प्रोषधोपवास, (५) सचित्त-विरति, (६) रात्रिभुक्ति विरति, व दिवामैथुन विरति, (७) ब्रह्मचर्य, (८) निरारंभ, (९) परिग्रह विरति, (१०) अनुमति त्याग और (११) उद्दिष्ट विरति। इन ग्यारह प्रतिमाओंको, वीतरागताको, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, कुशील त्याग और परिग्रह त्याग इन पांच व्रतोंको, दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, अतिथि संविभाग इन सप्त शीलको, अनशन, ऊनोदर, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, एकान्त शयनासन, कायक्लेश, प्रायश्चित, विनय, वैयाव्रत, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, ध्यान इन बाहर तपोंको, आहार, औषधि, अभय और ज्ञान इन चार व्यवहार दानोंको व राग—द्वेषकी निवृत्तिरूप निश्चय दानको तथा निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रको संग्रह करता हूं, अर्थात् आत्मानुभव है वहीं इन सबकी सफलता है आत्मानुभव व आत्मश्रद्धाशून्य ये धर्मके नामको नहीं पाते हैं ॥१२॥

मूलं गुणं पालंत जीव शुद्धं,
शुद्धं मयं निर्मल धारयेत्वं।
ज्ञानं मयं शुद्ध धरंत चितं,
ते शुद्धदृष्टी शुद्धात्मतत्वं ॥१३॥

अर्थः- मूलगुणों[1] को पालते हुए जीव शुद्ध होता है इसलिये इनको शुद्ध रूपसे धारना चाहिये। जो ज्ञानमई शुद्ध चारित्रको धारण करते हैं, वे ही शुद्ध दृष्टि व शुद्ध आत्मतत्त्वरूप हैं।

भावार्थः-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग ये पंच महाव्रत, ईर्या[2], भाषा[3], एषणा[4], आदान-निक्षेपण[5] और प्रतिष्ठापन[6] ये पंच समिति, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पंचेन्द्रियोंको वशमें करना ये पंचेन्द्रिय निग्रह, समता, वंदन, स्तवन, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक तथा स्नान त्याग, भूमि-शयन, वस्त्र त्याग, केशलुंच, एक बार लघुभोजन, दंतधावन-त्याग खड़े-खड़े आहार लेना यह अट्ठाईस मूलगुण महाव्रती दिगम्बर जैन साधुके हैं। अणुव्रती श्रावकके अष्ट मूलगुण श्रावकाचारों में भांति-भांतिसे वर्णन किये हैं। श्रीमत्

१- संवेग, निर्वेद, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य एवं अनुकम्पा इन आठ मूलगुणों के ग्रहण किये बिना, श्रावक व साधु का धर्म नहीं टिक सकता। २- जीवदयाके लिये आगेकी साढ़े तीन हाथ धरतीको शोधकर चलना। ३- हितमित और प्रिय वचन बोलना। ४- अंतराय रहित निर्दोष आहार लेना। ५- शुचि के उपकरण कमण्डल, ज्ञानके उपकरण शास्त्र और संयमके उपकरण शास्त्र और संयमके उपकरण पीछीको देख शोधकर रखना उठाना। ६-देख शोधकर प्रासुक भूमि पर मल-मूत्र आदि छोड़ना।

रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें स्वामी समंतभद्राचार्यजीने कहा है कि-

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥

अर्थात्- श्री गणधर व श्रुतकेवली, गृहस्थके मद्य, मांस, मधुके त्याग सहित पांच अणुव्रतको अष्ट मूलगुण कहते हैं ।

श्रीमत् पुरुषार्थसिद्ध्युपायजीमें स्वामी अमृतचंद्रसूरिने-

मद्यं मांसं क्षौद्रं पंचोदुंबरफलानि यत्नेन ।
हिंसाव्युपरतिकामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव ॥

अर्थात- मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलके त्यागको अष्ट मूलगुण कहा है ।

विद्वान पं० मेधावीजीने श्री धर्मसंग्रहश्रावकाचारमें कहा है कि-

आप्ते पंचनुतिर्जीवदया सलिलगालनम् ।
त्रिमद्यादिनिशाहारोदम्बराणां च वर्जनम् ॥

अर्थात- पंच परमेष्ठीमें रुचि, जीवदया, पानीको छान-कर काममें लाना, मद्य त्याग, मांस त्याग, मधु त्याग,

रात्रिभोजन त्याग और पंच उदम्बर त्याग, इनको श्रावक-के मूलगुण कहे हैं।

ये साधु और श्रावकके मूलगुण सर्व देश और एक देश चारित्रको स्थिर करनेवाले हैं। जो ज्ञानी इन मूलगुण रूप व्यवहारचारित्रको और कषायोंका निग्रह करके निजात्म स्वरूपमें लीन होने रूप निश्चयचारित्रको धारण करते हैं वे ही शुद्ध सम्यग्दृष्टि शुद्धात्मा हैं, जहां आत्मश्रद्धा है व आत्मानुभव है वहीं साधुके व श्रावकके मूलगुणोंकी माला शोभती है।

शंकाद्यदोषं मदमानमुक्तं,
मूढं त्रियं मिथ्या माया न दृष्टं।
अनाय षट्कर्ममल पंचवींसं,
त्यक्तस्य ज्ञानी मल कर्ममुक्तं ॥१४॥

अर्थः—जहां शंका आदि दोष नहीं हैं, जहां आठ मद नहीं हैं, जहां तीन मूढ़ता जो मिथ्या व मायारूप हैं सो नहीं हैं, जहां छह अनायतन नहीं हैं, ऐसे पचीस दोषसे रहित ज्ञानी कर्ममैलसे छूटता है।

भावार्थः—सम्यग्दर्शनको मलिन करनेवाले पचीस दोष हैं-

अष्टदोषः—निःशंकित आदि अष्ट अंगोंसे विरुद्ध शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना ये अष्ट दोष मिथ्यात्वके उदयसे होते

हैं। इसलिये सम्यक्त्वके अष्ट अंगोंसे उल्टा दोषोंका स्वरूप जानना चाहिये। ये अष्ट दोष सम्यक्त्वको दूषित करके नष्ट कर देते हैं। अतएव त्यागने योग्य हैं। इन अष्ट दोषोंको मन, वचन, कायसे त्यागनेसे सम्यक्त्व शुद्ध होता है।

तीन मूढ़ता–(१) देवमूढ़ता–किसी प्रकारके वर (सांसारिक भोगों या पदार्थोंकी इच्छाकी पूर्ति) की वाञ्छा करके रागी-द्वेषी देवोंकी उपासना करना, पूजना आदि देवमूढ़ता है।

(२) गुरु मूढ़ता-परिग्रह, आरंभ और हिंसादि दोषयुक्त पाखंडी भेषियों का आदर सत्कार पुरस्कार करना गुरुमूढ़ता है।

(३) लोक मूढ़ता-जिस क्रियामें धर्म नहीं, उसमें अन्य मतियोंके उपदेशसे तथा स्वयमेव बिना विचारे देखादेखी प्रवृत्ति करके धर्म मानना सो लोक-मूढ़ता है। जैसे-सूर्यको अर्घ देना, गंगास्नान करना, देहली पूजना आदि।

षट् अनायतन—कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, (कुशास्त्र) तथा इनके सेवकोंको धर्मके स्थान समझकर उनकी स्तुति प्रशंसा करना सो षट् अनायतन हैं, क्योंकि ये छहों सर्वथा धर्मके ठिकाने नहीं हैं।

अष्टमद–ज्ञान, पूजा (बड़प्पन), कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप तथा अपने शरीरकी सुन्दरताका मद करना और इनके अभिमान वश धर्म–अधर्मका, हित-अहितका कुछ भी विचार न करना, आत्मधर्म तथा आत्महितको भूल जाना। जिसप्रकार मद्य

पीनेवाला मद्य पीकर बेसुध हो जाता है उसी तरह अज्ञानी जीव मदसे उन्मत्त होकर धर्मकी ओरसे बेसुध हो जाता है।

सम्यक्त्वकी निर्मलताके लिये अष्ट दोष, तीन मूढ़ता, षट् अनायतन, अष्ट मद इन पच्चीस दोषोंको सर्वथा त्यागना योग्य है। जिनके आत्मामें ये दोष नहीं है, वहीं आत्मगुणोंकी माला शोभित होती है॥ १४ ॥

शुद्धं प्रकाशं शुद्धात्मतत्त्वं,
समस्तसंकल्पविकल्पमुक्तं ।
रत्नत्रयालंकृतसस्वरूपं,
तत्वार्थसार्धं बहुभक्तियुक्तं ॥१५॥

अर्थः—शुद्ध आत्म-तत्त्वका शुद्ध प्रकाश है जो सर्व संकल्प—विकल्पोंसे दूर है। जिसका मूल स्वभाव रत्नत्रयसे अलंकृत है वही तत्त्वार्थसार है उसीकी भक्ति करना चाहिये।

भावार्थः—शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यग्ज्ञान और शुद्ध सम्यक्चारित्र इस शुद्ध रत्नत्रयसे सुशोभित शुद्ध आत्माका प्रकाश निर्विकल्प है। उसमें संकल्प विकल्पका क्षोभ लेशमात्र भी नहीं है, यही जीवादि तत्त्वोंमें सारभूत है, उसीका अनुभव करना चाहिये॥ १५ ॥

जे धर्म लीना गुण चेतनेत्वं,
ते दुःख हीना जिनशुद्धदृष्टी ।
संप्रोय तत्वं सोई ज्ञान रूपं,
व्रजंति मोक्षं क्षणमेक एत्वं ॥१६॥

अर्थः–जो आत्माके चेतनगुणमें लीन होते हैं वे ही जिन[1] शुद्ध सम्यग्दृष्टि दुःखोंसे छूटते हैं, वे ही ज्ञानमई तत्वको अनुभवमें लेते हुए क्षणमात्रमें मोक्षको चले जाते हैं।

भावार्थः–जो ज्ञानी जीवादि तत्त्वोंका भेद–विज्ञान करके अपने निज स्वभावको परख लेते हैं और सम्पूर्ण विकल्प जालसे विमुक्त होकर अपने चैतन्यस्वरूपमें स्थिर होते हैं वे संपूर्ण कर्मबन्धनको समूल नष्ट करके स्वल्प काल हीमें परमपद प्राप्त करते हैं। यदि केवली श्रुतकेवलीका शरण प्राप्त हो जावे और भवस्थिति समीप होवे तो क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करके साक्षात् शुद्धोपयोग रूप शुक्लध्यानमें लीन होकर जीव अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त करके लोकका शिखामणि होता है। पण्डित भागचन्दजीने कहा है–

समकित लहअंतर्मुहूर्तमें केवल पाय वरे शिव रानी।

इसलिये तत्त्वज्ञानका अभ्यास करके सम्यग्दर्शनको

१–अरहन्त व सिद्ध परमात्माकी जिन संज्ञा है और अव्रत सम्यग्दृष्टि आदि भी एक देश जिन हैं।

निर्मल करना चाहिये और राग-द्वेषसे विरक्त होकर अपने स्वरूपमें विश्राम लेना चाहिये ॥ १६ ॥

जे शुद्ध दृष्टी सम्यक्त्व शुद्धं,
माला गुणं कंठ हृदय अरुलितं ।
तत्वार्थ सार्धं च करोति नेत्वं,
संसार मुक्तं शिव सौख्य वीर्यं ॥१७॥

अर्थ:-जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि शुद्ध सम्यक्त्वको पालते हैं अपने हृदयरूपी कण्ठमें गुणोंकी मालाको पहिनते हैं, वे नित्य तत्त्वार्थसारको पाते हैं और संसारसे पार होकर मोक्षके वीर्य व सुखको पा लेते हैं।

भावार्थ:-जो भव्य आत्मा कर्मभूमिमें मनुष्य गति प्राप्त करते हैं तथा केवली श्रुतकेवलीकी शरण प्राप्त करके अपने आत्माका शुद्ध स्वरूप पहिचान कर दर्शन मोहनीय और अनन्तानुबन्धीका क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं व इस मालारोहण ग्रन्थमें कहे हुए सद्गुणोंकी रत्नमालाको हृदयमें अंगीकृत करते हैं, वे शीघ्र ही शुक्ल-ध्यान और क्षपकश्रेणीको प्राप्त होकर मोहकर्मको सर्वथा क्षय करके केवलज्ञानकी निधि प्राप्त करते हैं। फिर योगोंका निग्रह करके अयोग केवली होकर नित्य और निरंजन पदको प्राप्त होते हैं। और अनेक सौभाग्यशाली आत्माएं माला-

रोहणमें कही हुई सोलह भावनाओंका चिंतवन करके तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं व समवसरणकी लक्ष्मीके स्वामी होकर अपनी दिव्य वाणीके द्वारा अनन्त भव्य जीवोंको अपार संसार सागरसे पार उतारकर आप निर्वाण पधारते हैं।

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्,
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्,
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः॥

र० क० श्रा०

अर्थात्—जिसके जिनेन्द्रकी भक्ति है ऐसा भव्य जीव अपरिमित देवेन्द्र समूहकी महिमाको और राजाओंके मस्तकसे पूजनीय चक्रवर्तिके चक्रको तथा नीचे किया है समस्त लोक जिसने ऐसे तीर्थंकर पदको प्राप्त होकर मोक्षको पाता है॥ १७॥

ज्ञानं गुणं माल सुनिर्मलेत्वं,
संक्षेप गुथितं तुव गुण अनन्तं।
रत्नत्रियालंकृत सत्यरूपं,
तत्वार्थ सार्धं कथितं जिनेन्द्रैः॥१८॥

अर्थः—शुद्ध आत्माके गुण तो अनन्त हैं इस ज्ञान-

गुणकी निर्मल मालामें संक्षेपसे कुछ गूंथे गये हैं। जिनेन्द्र भगवानने यही तत्त्वार्थका सार कहा है कि आत्माका स्वभाव रत्नत्रयसे शोभायमान है।

भावार्थः—धर्म—तीर्थके करता अनन्त गुणोंके धारक तीर्थंकर प्रभुने कहा है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय आत्मा तत्त्वार्थका सार है। वह अनन्त गुणोंसे सम्पन्न है। प्रत्येक द्रव्य अनन्त गुणात्मक है जो वचनसे अगोचर है। फिर भी मोक्षाभिलाषी शिष्यके सम्बोधनार्थ श्रीगुरुने आत्माको उपयोगमयी, चैतन्यमूर्ति, अमूर्तिक, दर्शन-ज्ञान—चारित्र युक्त आदि शब्दोंके द्वारा उसके गुणोंको स्पष्ट किया है। वास्तवमें आत्माके गुण—पर्याय अनन्त हैं, प्रत्यक्ष ज्ञान गोचर है, वचनसे नहीं कहे जा सकते। कहा है—

सुन श्रावक शुद्ध चिदायमकी,
महिमा वचतें नहिं जाय कही।
नहि गाय सके जिनराय अहो,
गणराय मती चकराय रही ॥
निरबाध अगाध समाधि मई,
सुख सायरता सरसाय सही।
तिहुँकाल अनंत समैं वरती,
षट् द्रव्य दशा दरसाय रही ॥१८॥

श्रेणीय पृच्छंति श्री वीरनाथं,
मालाश्रियं मागंत नेहचक्रं ।
धरणेन्द्र इन्द्रं गन्धर्व जक्षं,
नरनाह चक्रं विद्या धरेत्वं ॥१६॥

अर्थः– श्रेणिक महाराजने श्री महावीर भगवानसे प्रश्न किया है कि इस गुणमालाको किसने देखा है ? क्या धरणेन्द्र, इन्द्र, गंधर्व, यक्ष, चक्रवर्ति राजा तथा विद्याधरोंने देखा है ?

भावार्थः–भगवान वीर प्रभुके समवसमरणमें विराजमान श्रीमान् राजा श्रेणिकने अनेक प्रश्नोंके अतिरिक्त प्रभुसे निवेदन किया कि, हे प्रभु ! इस अनंत गुणात्मक आत्माकी रत्नमालाको किसने देखा है ? क्या पाताललोकके निवासी भवनवासियोंके स्वामी धरणेन्द्रने देखा है ? जिसकी आज्ञा असंख्य कल्पवासी देव शिरोधार्य करते हैं ऐसे देवेन्द्रने क्या इसे देखा है ?

चतुर्विधि निकायके देव समुदायमें प्रसिद्ध व्यन्तरवासी देव गंधर्व और यक्षोंने क्या इसे देखा है ? क्या इसे, चौदह रत्नोंके स्वामी और नवनिधिके नायक अनेक मुकुटबद्ध राजाओंसे वन्दनीय चक्रवर्तिने देखा है ? क्या इसे विमानमें विराजमान होकर आकाशके मार्ग यत्रतत्र विहरमान होते हुए व जलतारनी बहुरूपिणी आदि विद्याओंके स्वामी विद्याधरोंने देखा है ? ॥ १६ ॥

किं दिस रतनं वहुवे अनन्तं,
किं धन अनंतं वहुभेय युक्तं।
किं त्यक्त राज्यं वनवासलेत्वं,
किं तत्व वेत्वं वहुवे अनंतं ॥२०॥

अर्थः—क्या इस मालाको बहुत रत्नके धारकोंने व बहुत धनवानोंने देखा है ? क्या राज्यको छोड़ वनमें वसनेवालोंने देखा है ? क्या अनन्त तत्त्वके जाननेवालोंने देखा है ?

भावार्थः—विपुलाचल पर्वत पर असंख्य देव समुदायसे पूज्य और समवसरणकी लक्ष्मीसे सुशोभित भगवान सन्मतिनाथसे राजगृही नरेश श्रेणिक महाराजने प्रश्न किया कि हे नाथ ! अचेतन और मूर्तिक परन्तु नेत्रोंको चकाचौंध उपजानेवाली प्रभासे प्रकाशित और महामोही जीवोंके चित्तको क्षोभित करनेवाली रत्नराशिके स्वामियोंने क्या इसे देखा है ? जो स्वभावसे चञ्चल है पुण्यकी चेरी है, पुण्य क्षीण होते ही विलय जाती है, ऐसी चपलावत कमलाके नायकोंने क्या इस मालाको देखा है ? राग-द्वेष बढ़ानेवाले और महापापके कारणभूत राज्यको जिन्होंने तृणवत अथिर जानकर छोड़ दिया है ऐसे बाह्य परिग्रहके त्यागी द्रव्यलिंगियोंने क्या इस मालाको देखा है ? अक्षय अनंत जीव राशि और उससे भी अनंत गुणी पुद्गल राशि वा धर्म, अधर्म, आकाश तथा असंख्य

काल राशिका स्वरूप जाननेवाले व्यवहार सम्यक्त्वके धारकोंने क्या इस मालाको देखा है ? ॥ २० ॥

श्री वीरनाथं उक्तं च शुद्धं,
सुणु श्रेणिराया माला गुणार्थं ।
किं रत्न किं अर्थ किं राजनाथं,
किं तत्व वेत्वं नच माल दृष्टं ॥२१॥

अर्थः—तब श्री महावीर भगवान कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इस गुणमई मालाको न रत्न धारकोंने न धनवानोंने न राजाओंने न तत्त्वके मात्र जाननेवालोंने देखा है ।

भावार्थः—तब भगवज्जिनेन्द्रने समाधान किया कि हे श्रेणिक ! इस आत्मगुणमई मालाके देखनेका सम्बन्ध बाहरी पदार्थों के रखनेसे व बाहरी दृष्टिवालोंसे नहीं है। क्योंकि ऊपर कहे हुए रत्नपुंज आदिसे निरंजन और निर्विकार आत्मा निराला ही है, इसे शुद्ध सम्यक्त्वके धारक और परिणामोंकी परख रखनेवाले भेद विज्ञानी ही जानते देखते तथा अनुभव करते हैं ॥ २१ ॥

किं रत्न कार्यं बहुवे अनंतं,
किं अर्थ अर्थं नहि कोपि कार्यं ।
किं राज चक्रं किं काम रूपं,
किं तत्व वेत्वं बिन शुद्ध दृष्टि ॥२२॥

अर्थः-उस मालाको बिना शुद्ध सम्यग्दर्शनके कोई देख नहीं सकता। न वहां अनंत रत्नोंका काम है न अनंत धनका काम है न चक्रवर्तीके राज्यका प्रयोजन है न कामदेवके रूपका काम है न तत्त्वोंके ज्ञानका काम है।

भावार्थः-आत्माका परोक्ष या साक्षात् दर्शन होना मोहनीयके क्षय, उपशम वा क्षयोपशमकी अपेक्षा रखता है, सो जिस महाभाग्यने दर्शन मोहनीय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका उपशम किया है उनके ही आत्मामें यह सम्यग्दर्शनकी किरण जाग्रत होती है। इसमें रत्नराशि, धन, राज्य, रूपसौन्दर्य यहां तक कि तत्त्वोंके ज्ञानका भी प्रयोजन नहीं है। यद्यपि तत्त्वश्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहा है परन्तु यह व्यवहार सम्यक्त्वका लक्षण है-

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानो,
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्योंका त्यों सरधानो।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो,
तिनको सुन सामान्य विशेषैं, दिढ़ प्रतीत उर आनो ॥३॥
(छहढाला)

यह व्यवहार सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यक्त्वकी प्राप्तिमें कारणस्वरुप है-कार्यरूप नहीं है। उसमें निजात्माका शुद्ध स्वरूप नहीं दिखता। भाव यह है कि सप्त तत्त्व श्रद्धान व तत्वज्ञानसे जो व्यवहार सम्यक्त्व प्राप्त होता है वह

निश्चय सम्यक्त्वके बिना आभास रूप ही रहता है, उसमें आत्मदर्शन नहीं होता। जब तत्वज्ञान पूर्वक निश्चय सम्यक्त्व होता है तब आत्मस्वरूपकी लहर झलकने लगती है, नारकी व पशु आदि जिनको विशेष तत्त्वोंका ज्ञान नहीं होता है वे भी मिथ्यात्वके अंधेरेसे हटते ही सम्यक्त्वको व आत्मदर्शनको पा सकते हैं॥ २२॥

जे इन्द्र धरणेन्द्र गंधर्व यक्षं,
नाना प्रकारं बहुवे अनंतं।
तेऽनंतं प्रकारं बहु भेय कृत्वं,
माला न दृष्टं कथितं जिनेन्द्रैः॥२३॥

अर्थः—जिनेन्द्रने यह कहा है कि जो अनेक प्रकारके बहुतसे यहां तक कि अनंत इन्द्र, चन्द्र, धरणेन्द्र व यक्ष हो गये हैं किसीने भी उस मालाको नहीं देखा।

भावार्थः—इन्द्र, चन्द्र, धरणेन्द्र और यक्ष वृन्दसे वंदनीय भगवान वीरनाथने कहा है कि, जिसकी आज्ञा संख्यातीत देव वृन्द शिरोधार्य करते हैं ऐसे सब इन्द्र आत्मगुणमालाके ज्ञाता नहीं हैं। सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारोंके अधिपति चन्द्रने आत्मगुणकी मालाको नहीं देखा है। पाताल लोकके निवासी और भवनवासियोंके स्वामी धरणेन्द्रका इस आत्मगुणमालामें प्रवेश नहीं है।

इसी तरह व्यन्तरवासी देवोंके प्रभेद यक्ष जातिके देव इस आत्मगुणमालाकी थाह नहीं पा सकते।

यहां कल्पवासी, ज्योतिषी, भवनवासी और व्यन्तर चारों निकायके देवोंकी ओर संकेत करते हुए ग्रन्थकारने यह स्पष्ट किया है कि, चारों प्रकारके सम्पूर्ण देव व इन्द्र नियमसे आत्मज्ञानी नहीं होते। प्रयोजन कहनेका यह है कि मात्र देवगतिमें पहुँच जाना आत्मदर्शनका कारण नहीं है। जिनके सम्यक्त्व होगा वे ही आत्मदर्शन कर सकते हैं चाहे देव हो या अन्य कोई हो।

> जे शुद्ध दृष्टि सम्यक्त्व युक्तं,
> जिन उक्त सत्यं सु तत्त्वार्थ सार्धं।
> आशा भय लोभ स्नेह त्यक्तं,
> ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलितं ॥२४॥

अर्थः—जो शुद्ध सम्यक्दृष्टि सम्यक्त्व सहित हैं, जो जिनेन्द्रके कहे हुए सप्त तत्वार्थसारके जाननेवाले हैं, जिनके कोई आशा, भय, स्नेह व लोभ नहीं है, उन्होंने ही अपने हृदयरूपी कंठमें उस गुणमालाको धारण किया है।

भावार्थः—जिन-भाषित परमागमकी स्याद्वाद विद्याके पारगामी और सप्त तत्त्वोंमें सारभूत निजात्म स्वरूपके जाननेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंको इसलोक भय, परलोक

भय, मरण भय, वेदना भय, अनरक्षा भय, अनुगुप्त भय और अकस्मात भय यह सप्तभय[1] नहीं रहते, न उन्हें पापके बीजभूत पराधीन और क्षणिक लौकिक सुखोंकी अभिलाषा रहती है, उन्होंने जगतके सब चराचर पदार्थोंको अस्थिर निश्चय किया है इसलिये संसारकी किसी भी वस्तुमें उनका अनुराग नहीं रहता क्योंकि–

थिर बिन नेह कौनसे करैं ।
अथिर जान ममता परिहरैं ॥

इसी प्रकार पापके बाप और चतुर्गति संसारके कारण–भूत लोभ कषायका भी उनको मंद उदय रहता है ।

ऐसे भय, आशा, स्नेह, लोभसे रहित शुद्ध सम्यक्त्वके धारक जीव ही आत्मगुणमालाको हृदयरूपी कंठमें धारण करते हैं। यहां स्पष्ट इतना है कि, रत्न–पुष्प आदिकी माला तो कंठमें धारण की जाती है, परन्तु आत्मगुणमाला हृदयको सुशोभित करती है ॥ २४ ॥

जिनस्य उक्तं जे शुद्ध दृष्टी,
सम्यक्त्व धारी बहु गुण समाधिं ।

१--इहभव-भय परलोक-भय, मरण-वेदना-जात ।
अनरच्छा अनुगुप्त-भय, अकस्मात-भय सात ॥
(ना० स० सा०)

ते माल दृष्टं हृदय कंठ रुलतं,
मुक्ती प्रवेशं कथितं जिनेन्द्रैः ॥२५॥

अर्थः—जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि जिन कथित तत्त्वको जाननेवाले हैं, जिनको आत्म समाधिका गुण प्राप्त हो गया है, उन्होंने ही अपने हृदयरुपी कंठमें उस मालाको लटकते देखा है, वे ही मुक्तिमें प्रवेश करेंगे ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है।

भावार्थः—जो निकट भव्य जीव सम्पूर्ण विकल्प-जालसे विमुक्त होकर एक अन्तर्मुहूर्त भी आत्मिक रसका आस्वादन करते हैं अर्थात् किंचित् कालके लिये उपशम[1] सम्यक्त्व भी ग्रहण करते हैं वे अर्द्ध पुद्गलपरावर्तनसे किंचित् न्यूनकालके भीतर ही नियमसे परम पद प्राप्त करते हैं, फिर जिन्होंने मिथ्यात्वादि सप्त प्रकृतियोंको सत्तासे नष्ट करके स्थायी सम्यक्त्व ग्रहण किया है वे तद्भव अथवा तीसरे चौथे भव में नियमसे निर्वाण लक्ष्मीके स्वामी बनते हैं। यह क्षायिक सम्यक्त्व सादि है पर अनंत है अर्थात् इस क्षायिक सम्यक्त्वका आरंभ तो है पर अन्त नहीं है। इसलिये मोक्षाभिलाषी जीवोंको उचित है कि वे निरन्तर आत्म-अनुभवका अभ्यास करके आत्माके सम्यक्त्व गुणको

१-उपशम सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है फिर वह नियमसे नष्ट हो जाता है।

उज्ज्वल करें तथा अपने हृदयमें इस आत्मगुणमालाका आरोहण करें ॥ २५ ॥

सम्यक्त्व शुद्धं मिथ्या विरक्तं,
लाजं भयं गौरव जेवि त्यक्तं ।
ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलतं,
मुक्तस्य गामी जिनदेव कथितं ॥२६॥

अर्थः—जो शुद्ध सम्यक्त्वी मिथ्यात्वसे रहित हैं, जिन जीवोंके भीतर लज्जा, भय व गौरव (घमण्ड) नहीं है उन्होंने ही अपने हृदयरूपी कंठमें उस मालाको लटकते देखा है, वे ही मुक्तिगामी हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है।

भावार्थः-जिन जीवोंका सम्यक्त्व गुण निर्मल हुआ है और जिनकी शरीरादि व शरीरादिके सम्बन्धियोंसे अहं-बुद्धि हट गई है, जिन्हें सप्त प्रकारका भय नहीं रहा है, जिन्हें ज्ञान, जाति, कुल, बल, ऋद्धि, तप, शरीर और प्रतिष्ठाका अभिमान नहीं है और जो अपने आत्माको सदा निर्विकार चिंतवन करते हैं वे ही अपने हृदयरूपी कंठको इस गुणमालासे सुशोभित करते हैं ॥ २६ ॥

जे दर्शनं ज्ञान चारित्र शुद्धं,
मिथ्यात्व रागादि असत्यं च त्यक्तं ।

ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलतं,

सम्यक्त्व शुद्धं कर्म विमुक्तं ॥२७॥

अर्थः—जिनके शुद्ध सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्र है, जिनके मिथ्यात्व व रागादि व असत् भाव नहीं है, उन्होंने इस मालाको अपने हृदयरूपी कंठ में लटकते देखा है, उनहीके सम्यक्त्व शुद्ध है वे ही कर्मों से मुक्त होंगे।

भावार्थः—जिनका सम्यग्दर्शन चल मल—अगाढ़ आदि दोषोंसे रहित निर्मल है, जिनका ज्ञान संशय, विमोह, विभ्रमसे रहित है, जिनके हृदयमें कषायोंका उद्वेग नहीं है, जिनकी पर्यायबुद्धि नष्ट हो गई है, जो राग-द्वेष-मोह आदि विभाव परिणति पर विजय पा चुके हैं वे ही शुद्ध सम्यक्त्वादि सद्‌गुणोंके धारक इस गुणमालासे अलंकृत होते हैं ॥ २७ ॥

पदस्थ पिण्डस्थ रूपस्थ चित्तं,

रूपा अतीतं जे ध्यान युक्तं।

आर्तं च रौद्रं मदमानत्यक्तं,

ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलतं ॥२८॥

अर्थः—जो पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत इन चार धर्म ध्यानोंको करते हैं और जो आर्त्त व रौद्रध्यानसे व मद मानसे रहित हैं उन्होंने ही अपने हृदय कंठमें गुण-मालाको लटकते हुए देखा है।

भावार्थः-"एकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्" अर्थात् चित्तकी वृत्तिके एकाग्र स्थिर होनेको ध्यान कहते हैं। यह ध्यान आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ऐसे चार प्रकारका है। इनमेंसे आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान तो अप्रशस्त हैं व संसारके कारण हैं और धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान ये दो प्रशस्त हैं व मोक्षके कारण हैं[1]। ज्ञानार्णवजीमें शुभचन्द्राचार्यजीने कहा है-

आर्तरौद्रविकल्पेन दुर्ध्यानं देहिनां द्विधा।
द्विधा प्रशस्तमप्युक्तं धर्मशुक्लविकल्पतः॥

अर्थात्-जीवोंका अशुभ ध्यान आर्त-रौद्र भेदसे दो प्रकारका है तथा प्रशस्त ध्यान भी धर्म और शुक्ल भेदसे दो प्रकार कहा गया है।

इन चार प्रकारके ध्यानोंमेंसे धर्मध्यानके आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय ये चार भेद हैं।

आज्ञापायविपाकानां क्रमशः संस्थितेस्तथा।
विषयो यः पृथक् तद्धि धर्मध्यानं चतुर्विधम्॥ (ज्ञानार्णव)

धर्मध्यानके चार भेदोंमेंसे संस्थानविचय धर्मध्यानके चार भेद हैं-पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत।

पिंडस्थं च पदस्थं च रूपस्थं रूपवर्जितम्।
चतुर्द्धा ध्यानमाम्नातं भव्यराजीव भास्करैः॥ (ज्ञानार्णव)

१-परे मोक्षहेतू। (तत्त्वार्थ सू०)

१——पिण्डस्थ ध्यानकी पार्थिवी, आग्नेयी, श्वसना, वारूणी और रूपवती ये पांच धारणायें होती हैं।

या पिंडस्थ ध्यानके मांहि, देह विषै थित आतम ताहि।
चिंतवै पंच धारणा धारि, निज आधीन चित्तको पारि ॥

२——पदस्थ—

पदान्यालम्ब्य पुण्यानि योगिभिर्यद्विधीयते ।
तत्पदस्थं मतं ध्यानं विचित्रनयपारगैः ॥

अर्थात् जिसको योगीश्वर पवित्र मंत्रोंके अक्षर स्वरूप पदोंका अवलम्बन करके चिंतवन करते हैं उसको अनेक नयोंके पार पहुँचने वाले योगीश्वरोंने पदस्थ ध्यान कहा है।

३— रूपस्थ ध्यान—समस्त अतिशयोंसे विभूषित, स्वयं बुद्ध, समवसरणमें शोभायमान अनन्तचतुष्टयकी सम्पदासे सम्पन्न, जगतका कल्याण करने वाले, सर्वांग दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश देनेवाले सर्वज्ञ अरहंतका चिंतवन करनेको रूपस्थ ध्यान कहते हैं—

सर्व विभव जुत जान, जे ध्यावैं अरहन्तकूं।
मन वसि करि सति मान, ते पावैं तिस भावकूं॥

४——रूपातीत—

चिदानन्दमयं शुद्धममूर्त्तं परमाक्षरम् ।
स्मरेद्यत्रात्मनात्मानं तद्रूपातीतमिष्यते ॥

अर्थात् जिस ध्यानमें ध्यानी मुनि चिदानन्दमय, शुद्ध,

अमूर्त परमाक्षररूप आत्माको आत्मा ही स्मरण करै अर्थात् ध्यावै सो रूपातीत ध्यान माना गया है। इन ध्यानोंका सविस्तार वर्णन श्रीमत् ज्ञानार्णवजीसे जानना चाहिये, यहां विस्तार भयसे नहीं लिखा है।

प्रशस्त ध्यानमें लीन होकर तथा आर्त्त-रौद्र ध्यान और मद व अभिमानका जो ज्ञानी परिहार करते हैं वे ही अपने हृदयकंठमें गुणमालाको लटकते हुए देखते हैं ॥ २८ ॥

अन्या सुवेदं उपशम धरेत्वं,
क्षायिकं शुद्धं जिन उक्त सार्धं।
मिथ्या त्रिभेदं मल राग खंडं,
ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलतं ॥ २९ ॥

अर्थः—जिनके वेदक सम्यक्त्व है व उपशम सम्यक्त्व है व तीन प्रकारके मिथ्यात्वसे रहित शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व है, जो जिन-कथित तत्त्वको जानते हैं, जिनके कोई मल व रागका अणुमात्र भी नहीं है उन्होंने ही अपने हृदयरूपी गलेमें उस गुणमालाको लटकते हुए देखा है।

भावार्थः—आत्माके सम्यक्त्व गुणको ढकने वाली अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभकी चौकड़ी और दर्शनमोहनीयकी मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व तथा सम्यक्-प्रकृति ये तीन सब मिलाकर सात हैं। यदि ये सातों

प्रकृतियां उपशम हो जावें तो आत्मा उपशम सम्यक्त्वको, यदि सम्यक् प्रकृतिका उदय रहे तो वेदक[1] या क्षयोपशम सम्यक्त्वको, और यदि सातों प्रकृतियोंका सर्वथा क्षय हो जावे तो क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त होता है । इन तीनों सम्यक्त्वके धारक जीव जिनकथित तत्त्वके सम्यक् प्रकार ज्ञाता होते हैं और तीनों सम्यक्त्वकी दशामें आत्मिकरसका आस्वादन मिलता है । भेद इतना है कि उपशम सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्षयोपशम सम्यक्त्व अधिकसे अधिक छ्यासठ सागर टिकता है, और क्षायिक सम्यक्त्व अक्षय तथा अनन्त है । सो इन तीनों सम्यक्त्वके धारक जीव ही आत्म-गुणमालाको अपने हृदयकंठमें अवलोकन करते हैं ॥ २९ ॥

जे चेतना लक्षणो चेतनेत्वं,
अचेतं विनासी असत्यं च त्यक्तं ।
जिन उक्त सत्यं सु तत्त्वं प्रकाशं,
ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलतं ॥ ३० ॥

अर्थः—जो चेतना लक्षण आत्माको अनुभव करने वाले हैं, जो विनाशीक असत्य अनात्माके अनुभवसे शून्य हैं जिन्हें जिनकथित शुद्ध तत्त्वका प्रकाश हो रहा है उन्होंने ही

१-सम्यक् प्रकृतिको वेदता अर्थात् अनुभव करता है इससे यह वेदक सम्यक्त्व है ।

अपने हृदयरूपी कंठमें उस गुणमालाको लटकते हुए देखा है।

भावार्थः—जब आत्माका सम्यक्त्वगुण मिथ्यात्व और राग-द्वेषसे दूषित होता है तब उसे स्वरूपकी पहिचान नहीं होती वह शरीर और शरीरके सम्बन्धियोंसे अहंबुद्धि करता है। तत्त्व-कुतत्त्वको, देव-कुदेवको, शास्त्र-कुशास्त्रको, गुरु—कुगुरुको नहीं जानता, विपरीत ग्रहण करता है। परन्तु जब काललब्धिका निमित्त पाकर करणलब्धिको[1] प्राप्त होता है तब शरीरादि पर पदार्थोंसे उसकी अहंबुद्धि हट जाती है उसे अपने चैतन्यमूर्ति विज्ञानघन और आनन्दकन्द आत्माका अनुभव होता है और वह उसीमें मग्न रहता है। स्याद्वादवाणीमें जिस प्रकार तत्त्व स्वरूप वर्णन किया है वह उसीप्रकार श्रद्धान करता है॥ ३० ॥

जे शुद्ध बुद्धस्य गुणसस्य रूपं,
राागादि दोषं मल पुंज त्यक्तं।
ते धर्म प्रकाशं मुक्ति प्रवेशं,
ते माल दृष्टं हृदयकंठ रुलतं ॥३१॥

१—सम्यक्त्वकी प्राप्तिके लिये क्षयोपशमिक, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण यह पांच लब्धियां हैं। उनमें चार लब्धि तो सामान्य हैं, किन्तु करणलब्धि असाधारण है। इसके होने पर नियमसे सम्यक्त्व या चारित्र होता है। जब तक करणलब्धि नहीं होती तब तक सम्यक्त्व नहीं होता।

अर्थः–जिनके भीतर शुद्ध–बुद्ध आत्मगुण वा स्वभाव प्रगट है, जहां रागादि दोष व कर्मफल नहीं है, जहां आत्मधर्मका प्रकाश है, जो मुक्ति हीमें प्रवेश किये हुए हैं उन्होंने ही अपनेमें उस गुणमालाको लटकते हुए देखा है ।

भावार्थः–ध्यानकी अग्निसे आत्माकी कर्म–कालिमा दग्ध हो जाती है तब आत्मा शुद्ध होता है । और आत्माके ज्ञानगुण पर आवरण करनेवाले कर्म कलंक हट जानेसे आत्मा बुद्ध अर्थात् पूर्ण ज्ञानी कहलाता है । वहां राग–द्वेष-मोहको स्थान ही नहीं है और व्यवहारनयसे अष्टगुण[1] व निश्चयनयसे अनन्तगुण प्रगट हो जाते हैं, तथा स्वरूपकी प्राप्ति होना ही निर्वाण है । सो इस गुणमालाको आरोहण करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्माको निर्वाण स्वरूप ही चिंतवन करते हैं और शरीरमें रहते हुए भी मुक्ति स्वरूप हैं । समयसारजीमें ऐसे पवित्र आत्माओंको जीवन्मुक्त कहा है ॥३१॥

जे सिद्ध नंतं मुक्ति प्रवेशं,
शुद्धं स्वरूपं गुण माल ग्रहितं ।
जे केवि भव्यात्म सम्यक्त्व शुद्धं,
ते जात मोक्षं कथितं जिनेन्द्रैः ॥३२॥

१–समकित दर्शन ज्ञान, अगुरूलघू अवगाहना ।
सूक्षम वीरजवान, निराबाध गुण सिद्धके ॥

अर्थः—जो अनंत जीव सिद्ध होकर मुक्तिमें प्रवेश कर चुके हैं वे इस स्वरूप रूप गुणमालाको लेकर गये हैं इसी तरह जो कोई भव्य जीव शुद्ध सम्यक्त्वको धारकर इस गुणमालाको लेंगे वे भी मोक्ष पावेंगे ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है।

भावार्थः—इस गुणमालाको आरोहण करनेसे जीवात्मा ज्ञानावरणादि कर्ममलको क्षय करता है और नियमसे सिद्ध-पद पाता है। अब तक जो अनंत सिद्ध हुए हैं वे इसी मार्गको ग्रहण करके हुए हैं। इस आत्मगुणमालाका आदि तो है पर अन्त नहीं है। निर्वाण प्राप्त होने पर प्रगट किया हुआ गुणसमूह आत्माके साथ ही चलता है और अनन्त काल तक नष्ट नहीं होता। पं० दौलतरामजीने छहढालामें कहा भी है—

रहिहैं अनंतानंत काल, यथा तथा शिव परिणये।

जो भव्यजीव शुद्ध सम्यक्त्वको धारण करके इस शुद्ध आत्मगुणमालाको ग्रहण करेंगे वे सिद्धपदको प्राप्त करके मुक्ति रमणीके नायक बनेंगे ॥ ३२ ॥

मालारोहण ग्रंथका सारांश

जैनधर्म मोक्षका मार्ग है। वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्‌चारित्र रूप है। निश्चयसे निज आत्माके सच्चे स्वरूपका श्रद्धान, ज्ञान व अनुभव ही मोक्षमार्ग है, यही भाव शुद्ध उपयोगमय है। अपना आत्मा अनंत गुणोंका समुदाय है। यहां आत्माको ही गुणोंकी माला बतलाया गया है और उसीके पहिननेका उपदेश है। भाव यही है कि जो शुद्ध आत्माका यथार्थ अनुभव करते हैं वे ही सच्चे जैन हैं, वे ही मोक्षमार्गी हैं, वे ही सच्चे सुखको पाते हैं। पहिले ही ॐ की महिमा गाई है क्योंकि यह ॐ शब्द अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पांच परमेष्ठीका वाचक है, इसके चिंतवनसे आत्मतत्व झलकता है। वास्तवमें यही आत्मा अरहंत, सिद्ध आदि पांच पद रूप होता है। निश्चयनयसे ॐ शब्द भी मात्र उस शुद्धात्माका ही द्योतक है, जिस आत्मामें रत्नत्रय झलकते हैं। फिर ग्रन्थकर्ताने प्रगटपने श्री महावीर अर्हंत परमात्माको और सिद्धोंको नमस्कार किया है तत्पश्चात् आत्माके गुणोंका वर्णन चला है। यह आत्मा कहीं बाहर नहीं है अपना ही शरीर एक मंदिर है जहां सर्वत्र अपना आत्मारूपी देव व्यापक है। इस आत्माके स्वभावमें कर्मोंका बन्ध नहीं है। यह चेतना लक्षण द्वारा पहिचाना जाता है, क्योंकि यह बालगोपाल सबको झलकता है कि मैं चेत रहा हूं, इसलिये जिसमें सर्वत्र चेतना हो वही

आत्मा है । इस शुद्ध आत्माका स्वाद उनहीको आता है जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं अर्थात् जिनकी रुचि इस दुःखमय संसारसे हट गई है, जो अपने आत्माके मनोहर घरमें वास करना चाहते हैं, जिन्होंने मिथ्यात्वको हटा दिया है, जिनके जाति, कुल, धनादिका मद नहीं है, जिनके भावोंमें माया–मिथ्या–निदान–तीन शल्य नहीं हैं, जो शुद्ध आत्माको ही सच्चा देव–गुरू–धर्म समझते हैं, जो आत्मिक सुखको ही सुख जानते हैं, जो राग–द्वेष–मोह भावोंको मोहकर्मका विकार परभाव जानते हैं, जिनको पुण्य व पाप एक समान बाधक दिखता है–जो पुण्यको भी नहीं चाहते हैं ।

तत्त्वका सार शुद्ध आत्माका अनुभव है। शुद्ध आत्माको प्रत्यक्ष रूपसे देखने वाले केवलज्ञानी परमात्मा हैं । यह आत्मा अनन्त सुखका भंडार है । व्यवहार नयसे सर्वज्ञ वीतराग देव हैं, निर्ग्रंथ गुरु हैं व अहिंसामय धर्म है । इस धर्मका सार उत्तम क्षमा है जहां क्रोधादि के निमित्त मिलने पर भी क्रोधादि कुभावोंसे आत्माकी रक्षा की जावे यही अहिंसा धर्म है ।

शुद्ध आत्माके अनंत गुण हैं उनमें शुद्ध सम्यक्त्व, शुद्ध ज्ञान, शुद्ध चारित्र या वीतरागता, शुद्ध व अनंत वीर्य, व अनन्त सुख आदि मुख्य हैं। श्रुतज्ञानमें सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पांच अस्तिकाय व छह द्रव्य बताये हैं, इनके भीतर सार वस्तु सर्वज्ञरूप शुद्ध आत्मा है । जो इन तत्त्वोंको

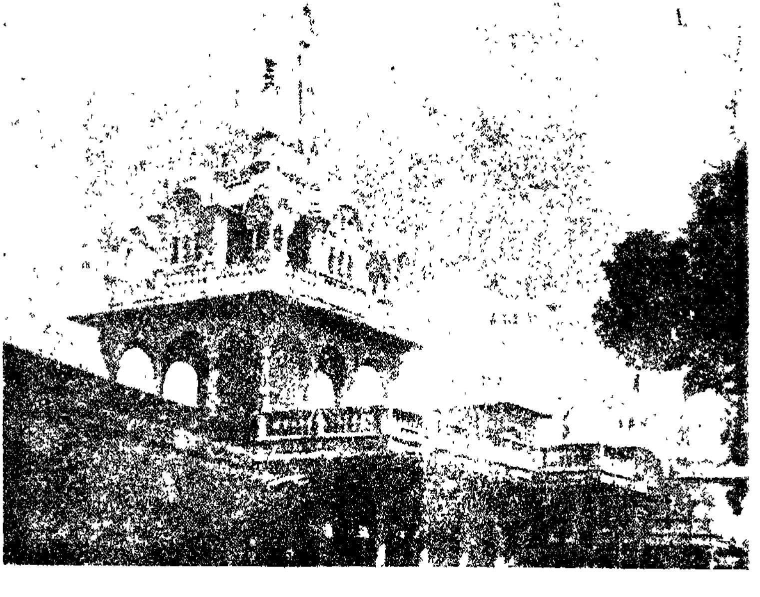
समझकर फिर इनके मध्यमेंसे अपने शुद्ध आत्माको अनुभव करता है वही वास्तवमें इन तत्त्वादिकोंका जानने वाला है। आत्माके गुणोंकी मालामें ही सर्व गुण हैं। देव-शास्त्र-गुरुका जो स्वरूप है वह आत्मीक गुणोंसे बाहर नहीं है, सिद्धोंमें जो गुण हैं वे ही आत्माके गुण हैं, दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारणमई भाव भी आत्मामें ही हैं, रत्नत्रय तो इस आत्मारूपी मालाके चमकते हुए रत्न हैं। दर्शन, व्रत आदि श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओंके भीतर जो मंदकषाय होनेसे वीतरागभाव है वे आत्मा ही के हैं। व्रतोंके, शीलके, तपके व दानके सर्व भाव आत्मामें ही पाये जाते हैं। शंकादि पच्चीस दोष रहित सम्यग्दर्शन ही आत्माका मुख्य गुण है। रत्नत्रयादि गुणोंसे अलंकृत आत्मारूपी मालाके अनुभवी ही तत्वके सारको समझते हैं, वे ही महापुरुष अपने हृदयरुपी कंठमें निरंतर आत्मारूपी गुणमालाको पहिनते हैं और इसके प्रतापसे मोक्षके स्वामी होकर अनंत सुख व वीर्यके अधिकारी हो जाते हैं।

इस आत्ममई गुणमालाको इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि नहीं देख सकते हैं। परंतु जो कोई भी शुद्ध सम्यग्दृष्टि महात्मा हैं वे ही देख सकते हैं। जिनको आशा व मद नहीं है वे ही महात्मा इस मालाको पहिन सकते हैं। जो सम्यग्दृष्टि आर्त–रौद्र कुध्यानोंको छोड़कर पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ व रूपातीत इन चार प्रकार धर्म ध्यानोंके द्वारा

आत्मस्वरूपके मननका अभ्यास करते हैं वे ही इस आत्मारूपी गुणमालाके पहिनने वाले हैं । इस मालाका आरोहण उनही महात्माओंके होता है जो अनात्मासे शून्य शुद्ध चेतना लक्षण निजात्माका अनुभव करने वाले हैं। जिनके अनुभवमें राग–द्वेषादि भावकर्मका प्रवेश नहीं होता है परन्तु शुद्ध आत्माका शुद्ध प्रकाश चमक रहा है वे ही इस गुणमालाको पहिननेवाले हैं। जितने महात्मा सिद्धगतिको प्राप्त हुए हैं वे इस गुणमालाको पहिनकर ही गये हैं, बिना इस मालाको कंठमें डाले किसीकी शक्ति नहीं है जो मोक्ष-महलमें पहुँच सके और शिवनारीसे भेंट कर सके। जो भव्य जीव मोक्षके अनुपम आनंदको निरन्तर भोगना चाहते हैं उनको उचित है कि वे जिन आगमके द्वारा तत्वोंको समझकर निज आत्मारूपी तत्वार्थसारको श्रद्धामें लावें। आत्माको मनन करते हुए निर्मल सम्यग्दर्शन को प्राप्त करें, एक शुद्धात्मानुभवके अभ्यासमें लग जावें। जिनको अनंत गुण पर्यायमय शुद्ध आत्माका स्वाद आता है वे ही मालाके पहिनने वाले हैं, वे ही यति व साधु हैं, वे ही अरहंत हैं तथा वे ही सिद्ध हैं। तात्पर्य यह है कि भव्य जीवोंको एक शुद्धात्मानुभवको ही जैनधर्म व मोक्षमार्ग प्रतीतिमें लाना चाहिये और उसीका सेवन करके मुक्तिके परम धाममें पहुँचना चाहिये।

–ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद

श्री १००८ तीर्थक्षेत्र निमईजी—मल्हारगढ़



भीतरी दृश्य श्री वेदीजी समाधिस्थल

ॐ

श्रीतारणतरण विरचित-

श्री कमलबत्तीसी टीका

मङ्गलाचरण ।

तारणतरण जिनेन्द्रको, बार बार सिरनाय ।
जा प्रसाद भव उदधिसे, भव्यजीव तरजाय ॥
कमलबत्तीसी ग्रन्थका, भाव लिखूं हरषाय ।
शुद्ध भाव होवे सही, राग द्वेष टलजाय ॥

तत्वं च परम तत्वं,
परमप्पा परम भाव दरसीए ।
परम जिनं परमिस्टी,
नमामिहं परम देवदेवस्य ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(तत्वं च परम तत्वं) सर्व तत्वोंमें उत्कृष्ट तत्त्वरूप जो (परमप्पा) परमात्मा अरहन्त है (परम भाव दरसीए) जो शुद्धोपयोग रूप उत्कृष्ट भावको या शुद्ध आत्मिक पदार्थको दिखलानेवाले हैं (परम जिनं) जो परम जितेन्द्रिय जिनेन्द्र हैं (परमिस्टी) व परम पदमें रहनेवाले हैं (परम देवदेवस्य) जो सर्व देवोंके देव सर्वज्ञदेव हैं (नमामिहं) उनको मैं तारणस्वामी नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थः–यहां श्री तारणस्वामीने शरीर सहित, चार घातिया कर्म रहित अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख व अनन्तवीर्य सहित सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत परमेष्ठीको नमस्कार किया है, जिनके द्वारा मोक्षका सार उपाय शुद्ध आत्मिक तत्वका प्रकाश होता है। उनको इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि सर्व ही बड़े बड़े लौकिक माननीय पुरुष नमस्कार करते हैं। वे महानदेव हैं, पूज्यनीय देव हैं। क्योंकि उनमें न कोई अज्ञानका विकार है न कोई क्रोधादि कषाय मल है। अरहन्तका परम उपकार है, उनकी वाणीसे ही हमको शुद्ध तत्वका लाभ होता है। हरएक जीव तत्व है, उन सबमें अरहन्त परम तत्व है या सात तत्वोंमें प्रधान अरहन्त परमात्मा तत्व है। इनकी जो कोई भक्ति करेगा व उपदेशके अनुसार चलेगा वह स्वयं अरहन्त हो सकेगा।

जिन वयनं सद्दहनं,
कमल सिरि कमल भाव उववन्नं।
आर्जव भाव संजुत्तं,
ईर्ज स्वभाव मुक्ति गमनं च ॥ २ ॥

अन्वयार्थः–(जिनं वयनं सद्दहनं) श्री जिनेन्द्र द्वारा प्रगट वाणीके द्वारा सार तत्वको ग्रहण कर श्रद्धान करना चाहिये (कमल सिरि कमल भाव उववन्नं) तब आत्मरूपी

कमलकी लक्ष्मीसे ही आत्मीक कमलका प्रकाश हो जाता है। अर्थात् शुद्ध सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है, अर्थात् आत्माका साक्षात्कार हो जाता है, (आर्जव भाव संजुतं) तब निराकुल समभावका या सरल शुद्र तत्वका अनुभव झलक जाता है, कोई विषमता या मलिनता या वक्रता परिणामोंमें नहीं रहती है (ईर्ज स्वभाव मुक्ति गमनं च) जो इस सरल शुद्ध आत्मीक स्वभावमें रमण करता है वही मोक्षका लाभ कर सकता है।

भावार्थः—जिसको मोक्षपदकी अभिलाषा हो उसके लिये यह उचित है कि वह जिनेन्द्र कथित छह द्रव्य, सात तत्व, नौ पदार्थोंमें पूर्ण श्रद्धावान हो, फिर भेदविज्ञानपूर्वक शुद्र निश्चयसे अपने आत्माको सर्व पर द्रव्योंसे व पर भावोंसे व कर्मजनित रागादि भावोंसे भिन्न मनन करे कि यह आत्मा अपने स्वभावसे पूर्ण है, अभेद है, परन्तु अन्य आत्माओंसे पुद्गलादि पांच द्रव्योंसे व रागादि भावोंसे बिलकुल भिन्न है, इस तरह भीतर मनन करते करते एका-एक सम्यग्दर्शनरूपी कमल जो मरझाया था विकसित हो जाता है, तब उस महात्माके भीतर समभावकी व आत्मानु-भवकी शक्ति प्रगट हो जाती है। वह वीतरागभावसे अपने स्वरूपमें परिणमन करता है। यही स्वरूपका स्वाद व स्वानुभव मोक्षकी सीढ़ी है, इसीसे अरहन्त सिद्ध परमात्माका पद हो जाता है।

अन्मोयं न्यान सहावं,
रयनं रयन स्वरूप ममल न्यानस्य ।
ममलं ममल सहावं,
न्यानं अन्मोय सिद्धि संपत्ति ॥३॥

अन्वयार्थः- (अन्मोयं न्यान सहावं) यह आत्मा परमानन्दमय ज्ञानस्वभावका धारी है (रयनं) स्वयं एक अद्भुत प्रकाशमान रत्न है (रयन स्वरूप) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रत्नत्रय स्वरूप है (ममल न्यानस्य) निर्मल ज्ञानका धारी है (ममलं) सर्व कर्म व रागादि मल रहित है । (ममल सहावं) शुद्ध निरञ्जन अभेदस्वभाव है (न्यानं अन्मोय सिद्धि संपत्ति) जो भव्य जीव इस आत्माके ज्ञानमें आनन्द लाभ करते हैं, मगन हो जाते हैं वे ही सिद्ध-गतिको पाते हैं ।

भावार्थः-यह आत्मा द्रव्य स्वाभावसे परम शुद्ध है, निर्मल ज्ञानका व आनन्दका सागर है, रत्नत्रयमई है, सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र इसीके गुण हैं । इसमें कोई सांसारिक कालिमा, रागादि मल व कर्मका बन्ध नहीं है । जो भव्य जीव अपने आत्माको ऐसा ध्याता है, आत्मा-नन्दमें मगन हो जाता है वही मोक्षमार्ग पर चलता हुआ स्वयं कर्म रहित सिद्ध हो जाता है ।

जिनय ति मिथ्याभावं,
अनृत असत्य पर्जाव गलियं च ।
गलियं कुन्यान सुभावं,
विलयं कम्मान तिविह जोएन ॥४॥

अन्वयार्थः– (मिथ्याभावं जिनय ति) पहले मिथ्यात्व भावको जीतना चाहिये, सम्यग्दर्शनका प्रकाश करना चाहिए (अनृत असत्य पर्जाव गलियं च) तब सर्व ही असत्य, अयथार्थ अवस्थाओंका मोह गल जाता है । सम्यक्त्वीको एक शुद्ध सिद्धपदका ध्येय रहता है, वह नाशवंत सर्व नर–नारक–देव–तिर्यंचकी अवस्थाओंसे इन्द्रादि पदोंसे विरक्त हो जाता है (कुन्यान सुभावं गलियं) उसके भीतरसे मिथ्या ज्ञानका सर्व विभाव निकल जाता है । वह हरएक पदार्थको जैसाका तैसा जानता है निश्चयनयसे आत्माको शुद्ध व व्यवहारनयसे अशुद्ध जानता है । जगतके पदार्थोंको द्रव्यदृष्टिसे नित्य व पर्यायदृष्टिसे अनित्य जानता है । वह कर्मके उदयसे होनेवाली साताकारी व असाताकारी अवस्थाओंको नाशवन्त जानके उनमें आसक्त नहीं होता है (तिविह जोएन कम्मान विलयं) इस तरह सम्यक्त्वी जब मन-वचन-काय तीनोंको स्थिर करके शुद्धात्माका अनुभव करता है तब संवर व निर्जराको पाकर नया बन्ध रोकता हुआ व पुरातन कर्मोंको क्षय करता हुआ एक दिन सर्व कर्मोंसे

मुक्त हो जाता है।

भावार्थः—मिथ्यात्व ही संसारवर्द्धक है, सम्यक्त्व ही संसार छेदक है। मिथ्यात्व अंधकार है। अंधकारमें पड़े मिथ्यात्वीके जिन बातोंसे आत्माका संसार बढ़ता है वे बातें सुहाती हैं, जिनसे परम सुख मिलता है वे बातें नहीं सुहाती हैं, वह विषयांध होता है। उसे कभी भी अपने आत्माके शुद्ध स्वभावका श्रद्धान नहीं होता है। इसलिये मिथ्यात्वको जिनवाणीके मननसे हटाना चाहिये। सम्यक्त्वी होकर संसार देह भोगोंसे विरक्त रहकर अपने शुद्धात्माका अनुभव करना चाहिये। मन, वचन, कायको रोककर ध्यानमय होना चाहिये, इसीसे कर्मोंका सर्व प्रकार क्षय हो जायगा।

नन्द आनन्द रुवं,
चेयन आनन्द पर्जाव गलियं च।
न्यानेन न्यान अन्मोयं,
अन्मोयं न्यान कम्म षिपनं च॥ ५॥

अन्वयार्थः—(आनन्द रुवं नन्द) आत्माके आनन्दमई स्वभावमें मगन होनेसे (चेयन आनन्द पर्जाव गलियं च) जब चिदानन्दमई परिणामोंका प्रकाश होता है तब अशुद्ध परिणाम दूर हो जाते हैं (न्यानेन न्यान अन्मोयं) आत्मज्ञानके द्वारा ज्ञानमें आनन्द आता है (न्यान अन्मोयं कम्म षिपनं च)

इस ज्ञानानन्दमई भावसे कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थः—सम्यग्दृष्टि जीवको अपने आत्माके शुद्ध स्वभावकी परम श्रद्धा होती है । शुद्ध निश्चयनयके द्वारा उसे अपना आत्मा व परका आत्मा शुद्ध ही दिखता है । वह आत्मबलके द्वारा राग-द्वेषको दूर कर जब अपने ही शुद्ध स्वभावमें एकाग्र होता है, स्वानुभवको जागृत करता है तब आत्मीक सुखमें मग्न हो जाता है । उसी समय आत्म-ध्यानकी आग जलती है जो कर्मोंको जलाती है । अतएव कर्मोंसे छूटनेका एक मात्र उपाय अपने ही ज्ञानानन्दमय स्वभावमें आनन्द भोग करना है । तब ही वीतरागता पैदा होती है, जो कर्मोंकी निर्जरा करती है ।

कम्म सहावं षिपनं,
उत्पन्न षिपिय दिष्टि सब्भावं ।
चेयन रूव संजुत्तं,
गलियं विलयंति कम्म बंधानं ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(कम्म सहावं षिपनं) कर्मोंका स्वभाव ही स्वयं पक करके या बिना पके तप द्वारा क्षय हो जाता है (उत्पन्न षिपिय दिष्टि सब्भावं) जब चार अनन्तानुबन्धी कषाय और तीन दर्शनमोहकी प्रकृतियें मिथ्यात्व, सम्यक्-मिथ्यात्व व सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्व बिलकुल सत्तामेंसे क्षय हो जाती हैं तब आत्माका स्वाभाविक क्षायिक सम्यग्दर्शन

प्रगट हो जाता है (चेयन रूव संजुत्तं) तब वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि आत्माके स्वभावका अनुभव करता है (कम्म बंधानं गलियं विलयंति) जिससे उसके कर्मबन्ध सब गलने लगते हैं, वह शीघ्र ही कर्मोंसे मुक्त हो जाता है ।

भावार्थः—जब तक इस जीवको क्षायिक सम्यक्त्व नही होता है तब तक यह क्षपकश्रेणी चढ़कर कर्मोंका क्षय नहीं कर सकता है। क्षायिक सम्यक्त्वी या तो उसी भवसे मोक्ष पा लेता है या यदि देव या नरक आयु बांध ली हो तो स्वर्गमें या प्रथम नरकमें जाकर उत्पन्न होता है। वहांसे आकर मनुष्य हो मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यदि सम्यक्त्व होनेके पहले मनुष्य या तिर्यंच आयु बांधी हो तो भोगभूमिमें उत्पन्न होता है। वहासे देव होता है फिर मनुष्य हो मुक्ति प्राप्त कर लेता है। शुद्ध व प्रौढ़ आत्मानुभव या आत्मध्यानका उपाय क्षायिक सम्यग्दर्शन है। वेदक सम्यक्त्वी आत्माके अनुभवके द्वारा ही सातों कर्म प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्वी होता है।

मन सुभाव संषिपनं,
संसारे सरनि भाव षिपनं च।
न्यान बलेन विसुद्धं,
अन्मोयं ममल मुक्ति गमनं च ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(मन सुभाव संषिपनं) संकल्प विकल्परूप, तर्करूप, विभावरूप मनका स्वभाव भी नाशवंत है। यह आत्माका ध्रुव स्वभाव नहीं है (संसारे सरनि भाव षिपनं च) संसारमें भ्रमण करानेवाले मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग भाव भी नाशवंत हैं क्योंकि कर्मोंके उदयसे होते हैं, आत्माके स्वभाव नहीं (न्यान बलेन विसुद्ध) आत्मज्ञानके बलसे शुद्ध भाव होता है, जहां मनका विकल्प नहीं रहता है न जहां मिथ्यात्वादि संसार भ्रमणकारी भावों पर लक्ष्य रहता है (अन्मोयं ममल मुक्ति गमनं च) तब आत्मिक आनन्दकी शुद्धता वर्तती है। यही शुद्धोपयोग मोक्ष पर आत्माको ले जाता है।

भावार्थः—मोक्षका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी एकतारूप शुद्धोपयोग है, जहां न मिथ्यात्व-भाव है न कोई अविरतभाव है न बुद्धिपूर्वक मन, वचन, कायकी चंचलता है। सम्यग्दृष्टिको उचित है कि संकल्प विकल्परूप मनसे व संसार भ्रमणकारी भावोंसे बिलकुल वैराग्यवान हो जावे, सर्व संसारकी पर्यायोंका लोभ छोड़ दे, एक मात्र शुद्ध आत्माके स्वरूपमें लवलीन हो जावे। जहां ज्ञानानन्दका सदा स्वाद आता है। यही शुद्धोपयोग अरहन्त परमात्मा बना देता है व यही सर्व कर्मोंसे मुक्त कराकर सिद्धपदमें स्थापित कर देता है।

वैरागं तिविहि उवन्नं,
जनरंजन रागभाव गलियं च।
कलरंजन दोष विमुक्कं,
मनरंजन गारवेन तिक्तं च ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः– (तिविहि वैरागं उवन्नं) सम्यग्दृष्टिके भीतर तीन प्रकारका वैराग्य पैदा हो जाता है, वह संसार शरीर व भोगोंसे उदास हो जाता है (जनरंजन रागभाव गलियं च) जगतके मानवोंको प्रसन्न करनेका रागभाव भी चला जाता है (कलरंजन दोप विमुक्कं) शरीरके सुखमें मगन होनेका दोष भी छूट जाता है (मनरंजन गारवेन तिक्तं च) मनको प्रसन्न करनेवाले गारवभावसे या मदसे भी रहित हो जाता है।

भावार्थः–सम्यग्दृष्टि, शुद्धात्माका पूर्ण श्रद्धानी होता है। सिद्धावस्थाको ही ग्रहण योग्य मानता है, शरीर रहित होना ही सुखकर समझता है, अतीन्द्रिय सुख भोगोंको सच्चा भोग जानता है, इसीलिये वह संसारकी सर्व अवस्थाओंसे व शरीरसे व विषय-भोगोंसे वैराग्यवान हो जाता है। वह सम्यक्त्वी सत्यपथ पर आरूढ़ होता है, मानवोंको प्रसन्न करनेका राग भाव बुद्धिसे निकाल डालता है, सत्य पथ पर चलते हुए कोई प्रसन्न हो या अप्रसन्न

हो उस बातकी चिन्ता सम्यक्त्वी नहीं करता है, न वह शरीरके सुखोंमें आसक्त होता है, न वह मनमें तीन प्रकारका गारव या मद भाव करता है। ऋद्धि गारव–ऋद्धि होनेका मद, रस गारव–रसायन बनानेका मद या अच्छे रस खानेके लाभका मद, सात गारव–सुखसे रहने, सोने, बैठनेका मद। इस तरह सम्यक्त्वी शुद्ध भावों का धारी होता है, आठ मदसे रहित होता है, निःशंकितादि आठ अंगोंके पालनसे पूर्ण निस्पृही रहता है, भावना केवल शुद्ध-पदकी रखता है, ऐसा सम्यक्त्वी मोक्ष पाता है।

दर्सन मोहंध विमुक्कं,
राग दोषं च विषय गलियं च।
ममल सुभाउ उवन्नं,
नन्त चतुस्टये दिस्टि संदर्स ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ–(दर्सन मोहंध विमुक्कं) क्षायिक सम्यक्त्वीके दर्शनमोहनीय कर्मका क्षय हो गया है (रागं दोषं च विषय गलियं च) इसलिये सांसारिक पदार्थोंमें राग–द्वेष चला गया है व पांचों इन्द्रियोंकी तृष्णा गल गई है (ममल सुभाउ उवन्नं) निर्मल आत्मीक स्वभावका प्रकाश हो गया है (नन्त चतुष्टये दिस्टि संदर्स) जिस स्वभावमें अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख व अनन्त वीर्यका दर्शन दिख रहा है

अथवा आत्मज्ञानके प्रकाशसे अनन्तचतुष्टयमय अरहन्त पद प्रगट हो जाता है।

भावार्थ–क्षायिक सम्यक्त्वीके भावोंमें संसारसे पूर्ण वैराग्य है। वह समभावसे जगतको जैसा उसका स्वभाव है व परिणमन है वैसा ही जानता है, किसी को न इष्ट मानता है, न अनिष्ट, इसलिये राग-द्वेष नहीं करता है। सम्यक्त्वीके अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आ गया है। इस अपूर्व आत्मीक रसास्वादके सामने पांचों इन्द्रियोंके भोगकी तृष्णा मिट गई है, भेदविज्ञान पूर्वक वीतराग विज्ञानमई आत्मीक शुद्ध स्वभावका अनुभव सम्यक्त्वी करता है। अपना स्वभाव अनन्त चतुष्टयमई जानता है। शुद्धोपयोगके प्रभावसे ऐसा सम्यक्त्वी ही अरहंत परमात्मा हो जाता है।

तिअर्थं सुद्ध दिष्टं,
पंचार्थं पंच न्यान परमेस्टी।
पंचाचार सुचरनं,
सम्मत्तं सुद्ध न्यान आचरनं ॥ १० ॥

अन्वयार्थः–(तिअर्थं सुद्ध दिष्टं) सम्यग्दृष्टि शुद्ध रत्नत्रयको अनुभव करनेवाला है (पंचार्थं पंच न्यान परमेस्टी) वह पांच अस्तिकायोंको जानता है, पांचों ज्ञानोंको पहचानता है, पांचों परमेष्ठीयोंके स्वरूपको समझता है

(पंचाचार सुचरनं) ऐसा सम्यक्त्वी साधु दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार व वीर्याचारका भले प्रकार आचरण करता है (सम्मत्तं सुद्ध न्यान आचरनं) तथा निश्चयसे सम्यक्त्वी शुद्ध आत्मज्ञानमें ही रमण करता है।

भावार्थः—क्षायिक सम्यक्त्वी जीव शुद्ध सम्यग्दर्शन, शुद्ध सम्यग्ज्ञान व सम्यक्‌चारित्र मई शुद्ध आत्माका अनुभव करता है, वह पांच अस्तिकायोंको जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म व आकाशको जानता है। मति-श्रुत-अवधि मनःपर्यय व केवलज्ञानका स्वरूप समझता है। अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ऐसे पांच परमेष्ठीयोंके यथार्थ स्वभावको जानता है। साधुपद्में व्यवहारनयसे वह दृढ़ श्रद्धान रखके सम्यक्त्वके निःशंकितादि आठ अंगोंको पालता है। शब्द शुद्ध, अर्थ शुद्ध, उभय शुद्धि, काल, विनय, बहुमान, उपधान (धारणा) सहित, निन्हव (गुरुनाम छिपाना) रहित इन आठ ज्ञानके अंगोंको पालता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग, – महाव्रत पांच, ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, उत्सर्ग—समिति पांच, मन, वचन, काय—गुप्ति तीन, इन तेरह प्रकारके चारित्रको पालता है। अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान उन बारह प्रकार

तपको आचरण करता है। अपने आत्मबलको लगाकर धर्मका उद्योग करता है, यह वीर्याचार है। व्यवहारनयसे इन पांच तरह आचरणोंको पालता है, निश्चयसे अपने शुद्ध आत्मज्ञानमें ही आचरण करता है, यही मोक्षका मार्ग है, इस पर सम्यक्त्वी भले प्रकार आरूढ़ हैं।

दर्सन न्यान सुचरनं,
देवं च परम देव सुद्धं च।
गुरुवं च परम गुरुवं,
धर्मं च परम धर्म सब्भावं ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ:-(दर्सन न्यानं सुचरनं) व्यवहारनयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रको तथा निश्चयसे तीन स्वरूप अपने आत्माको जानता है (देवं च परम देव सुद्धं च) देवोंमें उत्तम उत्कृष्ट देव अरहन्त व सिद्धको जानता है, यह व्यवहार है, निश्चयसे अपने शुद्धात्माको ही परम देव मानता है (गुरुवं च परम गुरुवं) व्यवहारसे निर्ग्रंथ दिगम्बर साधुको ही अपना गुरु जानता है, निश्चयसे अपने शुद्धात्माको ही परम गुरु समझता है (धर्मं च परम धर्म सब्भावं) व्यवहारसे जिनधर्मको परम धर्म मानता है, निश्चसे शुद्ध आत्मिक स्वभावको ही धर्म समझता है,

भावार्थ:-साक्षात् मोक्ष साधक भावको निश्चय कहते

हैं। उस निश्चयकी प्राप्तिमें जो सहायक कारण होते हैं, उनको व्यवहार कहते है। निश्चयसे अपना शुद्ध आत्मा ही रत्नत्रय स्वरूप है। यही देव है, गुरु है, व यही धर्म है। जिसने शुद्धात्मानुभव कर लिया उसने देव-गुरु-धर्मको व रत्नत्रयको यथार्थपने आराधन कर लिया। शुद्धात्माके अनुभवके अलाभमें रत्नत्रयके भेदोंका मनन व पालन अरहन्त सिद्धकी भक्ति, निर्ग्रंथ दिगम्बर गुरुकी सेवा, जिनधर्मका आराधन व्यवहार है। इसके आलम्बनसे हम अशुभमें नहीं गिरेंगे व फिर शुद्धोपयोगमें आरूढ़ हो सकेंगे।

जिनयं च परम जिनयं,
न्यानं पंचामि अषिरं जोयं।
न्यानेन न्याय विर्धं,
ममल सुभावेन सिद्धि सम्पत्तं ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः-(जिनयं च परमजिनयं) सम्यक्त्वी ऐसा जानता है कि सर्व जाननेवालोंमें श्रेष्ठ कर्मविजयी श्री जिनेन्द्र हैं (न्यानं पंचामि अषिरं जोयं) तथा पांचवां केवलज्ञान ही अविनाशी व योग्य यथार्थ सम्यग्ज्ञान है (न्यानेन न्यान विर्धं) तथा आत्मज्ञानके अनुभवसे ही ज्ञानकी वृद्धि होती है, श्रुतज्ञानके द्वारा आत्माका अनुभव करते करते धर्मध्यान व शुक्लध्यानके द्वारा केवलज्ञानका प्रकाश होता है (ममल

सुभावेन सिद्धि संपत्तं) जब शुद्ध स्वभावका प्रकाश हो जाता है, आत्मा कर्म-मलोंसे बिलकुल छूट जाता है तब सिद्ध-गतिकी प्राप्ति हो जाती है।

भावार्थः-आत्माके महान् वैरी अनन्तानुबन्धी कषाय व मिथ्यात्व हैं। उनको जीतनेवाला सम्यक्त्वी जिन है। यही सम्यक्त्वी जब सर्व कषायोंको व अज्ञानको क्षय करके अरहंत परमात्मा हो जाता है तब वह जिनेन्द्र कहलाता है। केवलज्ञान आत्माका स्वाभाविक ज्ञान है। एक बार प्रगट होने पर फिर कभी नाश नहीं होता है। चार ज्ञान क्षयोपशम-भाव हैं, विभाव हैं-इसलिये नाश हो जाते हैं, स्वभाव सदा अविनाशी बना रहता है। केवलज्ञानकी प्राप्तिका उपाय आत्माका अनुभव है। बाहरी चारित्रसे केवलज्ञान प्रगट नहीं हो सकता है। जब कोई शुद्धात्मामें रमण करेगा उसीके कर्मके क्षयसे केवलज्ञान होगा। जब सर्व रागादि मल व कर्ममल आत्मासे दूर हो जाते हैं तब वह सिद्धपदका धनी हो जाता है।

चिदानन्द चिंतवनं,
  चेयन आनन्द सहाव आनन्दं।
कम्ममल पयडि षिपनं,
  ममल सहावेन अन्मोय संजुत्तं ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(चिदानन्द चिंतवनं) चित् और आनन्दमई आत्माका मनन करना चाहिये (चेयन आनन्द सहाव आनन्दं) तब ज्ञानानन्दका या स्वाभाविक आत्मसुखका प्रकाश होगा (अन्मोय संजुत्तं ममल सहावेन) इस आनन्द सहित शुद्ध स्वभावके अनुभवसे (कम्ममल पयडि विपनं) कर्म कलंककी प्रकृतियें क्षय हो जाती हैं।

भावार्थः—कर्मोंका मल एक भारी कलंक है कर्मकी प्रकृतियां मूल आठ हैं, उत्तर प्रकृतियें एकसौ अड़तालीस हैं। इन सबके क्षयका उपाय या अविपाक निर्जराका उपाय यथार्थ वीतराग भाव है, क्योंकि बन्धके कारण राग-द्वेष-कषाय हैं। यह वीतराग भाव तब ही प्रगट होता है जब सम्यग्ज्ञान व वैराग्य सहित अपने शुद्धात्माका स्वभाव मनन करते करते आत्माका अनुभव प्रगट हो जाता है, उस समय अतीन्द्रिय स्वाभाविक सुखका स्वाद आता है। इस आनन्द मग्न स्वभावके स्थिर होनेसे ही कर्म क्षय हो जाते हैं। एक अन्तर्मुहूर्त लगातार आत्मध्यान रहे तो चारों घातिया कर्म क्षय होकर अरहन्त पद प्रगट हो जाता है। आत्म-ध्यानसे ही कषायोंका जैसे जैसे उपशम या क्षय होता है वैसे वैसे यह आत्मा वीतराग भावमें उन्नति करता जाता है। मुमुक्षुको एक आत्मध्यानका ही अभ्यास करना योग्य है।

अप्पा परपिच्छंतो,
पर पर्जाव सल्य मुकं च।
न्यान सहावं सुद्धं,
सुद्धं चरनस्य अन्मोय संजुत्तं ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः–(अप्पा परपिच्छंतो) जब आत्माका और परद्रव्यका स्वभाव भिन्न भिन्न विचार किया जाता है, शुद्ध निश्चयनयसे अपने आत्माको सर्व अन्य आत्माओंसे, पुद्‌गलादि पांच द्रव्योंसे, आठ कर्मके बन्धसे, राग–द्वेषादि मलसे भिन्न भिन्न देखा जाता है (पर पर्जाव सल्य मुक्कं च) तब आत्मीक भाव जग जाता है और पर परिणति राग–द्वेषादि व शुभ–अशुभ भाव तथा माया, मिथ्या, निदान, शल्य सब छूट जाते हैं (सुद्धं न्यान सहावं) शुद्ध ज्ञानस्वभावी आत्मा अनुभवमें आता है (अन्मोय संजुत्तं सुद्धं चरनस्य) तब आनन्द सहित शुद्ध स्वभावमें आचरण या रमण होता है।

भावार्थः–शुद्ध स्वभावमें रमण ही मोक्षमार्ग है, इसके लाभका उपाय भेदविज्ञान है। भेदविज्ञान मिली हुई वस्तुओंको अलग अलग देखता है तब दोनोंके संयोगके कारण होनेवाले भाव या पर्यायें नहीं दिखती हैं । जैसे पानी मिट्टीसे मिला हुआ है तब मिली हुई पानीकी दशा मलिन दिखती है, जब भेदविज्ञानके द्वारा पानीको मिट्टीके

संयोगसे भिन्न देखा जावे तब पानी बिलकुल साफ दिखता है । उसी तरह आत्माको कर्म या शरीरके साथ देखनेसे यह नर–नारक–देव या रागी, द्वेषी, मोही, श्रावक, या मुनि दिखता है । जब आत्माको कर्म व शरीरसे भिन्न देखा जावे तब यह अपना ही आत्मा सबसे निराला शुद्ध निरंजन सिद्ध भगवानके समान दिखता है । उस समय कोई विभाव नहीं होते हैं, न कोई मिथ्यात्वकी शल्य होती है, न कोई मायाचार है, न कोई भोगाकांक्षा रूप निदानभाव है, तब शुद्ध ज्ञानस्वभाव झलक जाता है । इसी स्वभावमें तन्मय होना शुद्ध चारित्र है । जहां निरन्तर परमानन्दका स्वाद आता है । यही भाव कर्मोंके संवर व उनकी निर्जराका उपाय है ।

अबम्भं न चवन्तं,
विकहा विसनस्य विषय मुक्कं च ।
न्यान सुहाव सु समयं,
समय सहकार ममत्त अन्मोयं ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः –(अबम्भं न चवन्तं) जब शुद्धात्माके स्वभावमें रमण होता है तब अब्रह्म भाव नहीं होता है, यद्यपि ब्रह्मचर्य होता है, कुशीलताका भाव नहीं उठता है (विकहा विसनस्य विषय मुक्कं च) स्त्री, भोजन, राष्ट्र व राजा

सम्बन्धी राग-द्वेष-मोह वर्द्धक कथाएँ छूट जाती हैं व जुआ, मांस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री रमणके विषय लुप्त हो जाते हैं (न्यान सुहाव सु समयं) तब ज्ञानस्व-भावी आत्मा स्वसमय रूप रहता है। अपने ही शुद्धात्माके श्रद्धान-ज्ञान व चारित्रमें लीन होता है (समय सहकार ममल अन्मोयं) इस स्वरूपरमण स्वसमयकी सहायतासे कर्ममल भी दूर होता है व परमानन्दका लाभ भी होता है।

भावार्थ:—चारों विकथाएं, सात व्यसन, व कामविकार आत्माके ध्यानमें बाधक हैं। जब भेदविज्ञानपूर्वक शुद्धात्माका अनुभव होता है, तब वहां कोई अन्य भाव नहीं होते हैं, विचारकी चञ्चलता मिट जाती है, परिणाम अपने ब्रह्म स्वभावमें तन्मय हो जाते हैं, वहां व्यसन व विकथाओंका कुछ भी विचार नहीं होता है। आत्मा अपने स्वभावमें मगन होता है। यह आत्मानुभव ही ध्यानकी आग है जो कर्मोंके ईंधनको जलाती है व यही अमृतरसका प्रवाह बहाती है, जिसको पीकर आत्मा आनन्द मगन हो जाता है, यही सच्चा मोक्षमार्ग है।

जिन वयनं च सहावं,
जिनय मिथ्यात कषाय कम्मानं।
अप्पा सुद्धप्पानं,
परमप्पा ममल दर्सए सुद्धं ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः-(जिन वयनं च सहावं) जिनवाणीका यही स्वभाव है (जिनय मिथ्यात कषाय कम्मानं) जो इस जिनवाणी-का मनन करता है व उसके अनुसार आत्माको परसे भिन्न विचारता है उसका मिथ्यात्वभाव चला जाता है, उसके क्रोधादि कषाय नाश हो जाते हैं, उसके सर्व ही कर्म क्षय हो जाते हैं (अप्पा सुद्धप्पानं) यही जिनवाणी अपने आत्माको द्रव्यदृष्टिसे शुद्धात्मारूप दिखाती है (परमप्पा ममल दर्सए सुद्धं) उसीके प्रतापसे कर्ममल रहित, रागादि दोष रहित शुद्ध परमात्माका दर्शन होता है।

भावार्थः-तीर्थंकर जिनेन्द्रके द्वारा प्रगट हुई दिव्य-ध्वनिको जिनवाणी कहते हैं। उसीके अनुसार संकलित द्वादशांग वाणीको भी जिनवाणी कहते हैं उस द्वादशांग वाणीके अनुसार आचार्योंके द्वारा रची हुई ग्रन्थावलीको भी जिनवाणी कहते हैं। जो उस जिनवाणीका सच्चा भक्त हो जाता है, मन लगाकर पढ़ता है व विचार करता है वह निश्चयनयसे आत्माके द्रव्यस्वभावको शुद्ध जानकर उसीका मनन करता है तब यही आत्मीक मनन मिथ्यात्वको दूर करके सम्यग्दर्शन प्रगट कर देता है, अनन्तानुबन्धी कषाय दूर हो जाते हैं। फिर जैसा-जैसा जिनवाणीका भक्त शुद्धात्मा-का मनन या अनुभव करता है वैसा वैसा वह कषायोंका क्षय करता जाता है, फिर कर्मोंका नाश कर देता है।

जिनवाणीके प्रतापसे ही सिद्ध भगवानका, अरहन्त परमात्माका व अपने आत्माका सच्चा स्वरूप दिख जाता है। जिनवाणी परमोपकार करनेवाली है, इसलिये जिनवाणीका मनन नित्य करना योग्य है।

जिन दिष्टि इष्टि संसुद्धं,
इस्टं संजोय विगत अनिष्टं ।
इस्टं च इस्ट रूवं,
ममल सहावेन कम्म संषिपनं ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(जिन दिष्टि इष्टि संसुद्धं) जिनधर्मकी दृष्टि प्रिय और शुद्ध होती है (इस्टं संजोय विगत अनिष्टं) तब आत्महितकारी वस्तुओंका संयोग होता है और आत्माको अहितकारी वस्तुओंका वियोग होता है (इस्टं च इस्ट रूवं) जो अपना प्रिय आत्मस्वरूप है वही इष्ट है (ममल सहावेन कम्म संषिपनं) शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थः—शुद्धताके सच्चे स्वभावकी रुचि ही सम्यग्दृष्टि है। जो सम्यग्दृष्टि होता है वह निरन्तर ऐसे संयोग मिलाता है जिनसे सम्यक्त्वमें बाधा न हो व उन कारणोंसे बचता है जिनसे सम्यक्त्वमें बाधा हो जाती है। शुद्धात्माकी तरफ उपयोगको रमानेवाले भजन, पूजन, मनन, स्वाध्याय,

सत्संगति आदि करता है। अपने स्वभावको निर्मल रूपसे ध्याता है। उसी उपायसे कर्मोंका क्षय होता है।

अन्यानं नहि दिट्ठं,
न्यान सहावेन अन्मोय ममलं च।
न्यानंतरं न दिट्ठं,
पर पर्जाव दिट्ठि अंतरं सहसा ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः-(अन्यानं नहि दिट्ठं) सम्यग्दृष्टिके भीतर कोई मिथ्याज्ञान नहीं दिखलाई पड़ता है (न्यान सहावेन अन्मोय ममलं च) वह ज्ञानमई स्वभावके द्वारा शुद्ध आनन्दको भोगता है (न्यानंतरं न दिट्ठं) उसके आत्मज्ञानमें अन्तर या आघात नहीं होता है (पर पर्जाव दिट्ठि अन्तरं सहसा) परन्तु पर परिणतिका अन्तर यकायक बना रहता है।

भावार्थः-क्षायिक सम्यग्दृष्टि शुद्ध सम्यग्दृष्टि है, उसे कभी मिथ्यात्वका उदय नहीं होता है वह सदा आत्मज्ञानमें रुचिवान होकर ज्ञानानन्दमई शुद्ध स्वभावका अनुभव करता है। धारावाही ज्ञानका परिणमन होता है तब रागद्वेष परिणति बहुत काल तक नहीं होती है। शुद्धात्माका अनुभव जितना अधिक होगा उतनी अधिक वीतराग परिणतिका प्रवाह बहेगा जिससे बहुत अधिक कर्मोंका संवर व पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा होगी।

अप्पा अप्प सहावं,
अप्पा सुद्धप्प ममल परमप्पा ।
परम सरूवं रूवं,
रूवं विगतं च ममल न्यानं च ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः-(अप्पा अप्प सहावं) ज्ञानीके भीतर आत्मा आत्मीक स्वभावमें झलकता है (अप्पा सुद्धप्प ममल परमप्पा) कि यह मेरा आत्मा ही शुद्धात्मा है सर्व रागादि मल रहित है व यही परमात्मा है (परम सरूवं रूवं) इसका उत्कृष्ट सर्वोत्तम स्वभाव है (रूवं विगतं च ममल न्यानं च) यह आत्मा मूर्तिक रूपसे रहित अमूर्तिक है, शुद्ध ज्ञानाकार है ।

भावार्थः-सम्यग्दृष्टि उसे ही कहते हैं जिसको भेद-विज्ञानके द्वारा अपना आत्मा व परका आत्मा सर्व कर्म रहित, शरीर रहित, रागादि भावकर्म रहित दिखता है। आत्मा द्रव्यस्वभावमें जैसा है वैसा ही ज्ञानीको झलकता है। वह असंख्यात प्रदेशी अमूर्तिक ज्ञानाकार परम चैतन्य-स्वरूप है। यही ईश्वर, परब्रह्म व परमात्मा है। परम ज्ञानानन्दमय है, परम शुद्ध है, ऐसा ही मनन करते करते ज्ञानीके भीतर शुद्धात्माका अनुभव प्रगट हो जाता है। जब परिणाम पर पदार्थसे छूटकर आत्मामें रमता है तब शुद्धात्मा-

का अनुभव होता है। यही ध्यानकी अग्नि है।

ममलं ममल सरूवं,
न्यानं विन्यान न्यान सहकारं।
जिन उत्तं जिन वयनं,
जिन सहकारेन मुक्ति गमनं च ॥ २० ॥

अन्वयार्थः–(ममलं ममल सरूवं) आत्मा सर्व कर्म मलरहित शुद्ध स्वरूप धारी है (न्यानं विन्यान न्यान सहकारं) ज्ञानमई है, परसे भिन्न है, यही विज्ञान या भेदविज्ञान केवलज्ञानकी प्राप्तिका कारण है (जिन उत्तं जिन वयनं) ऐसा जिनेन्द्रने कहा है, यही जिनवाणी बतलाती है (जिन सहकारेन मुक्ति गमनं च) जो श्री जिनेन्द्रकी शरण ग्रहण करता है अर्थात् जिनेन्द्र कथित भेद–विज्ञानके मार्ग पर चलता है वही मोक्ष प्राप्त करता है।

भावार्थः–जिसको इस भवसागरसे पार होकर स्वाधीन सिद्धपदको प्राप्त करना हो उसको उचित है कि वह जिनवाणीका भलेप्रकार अध्ययन करे। व्यवहार नय या अशुद्ध नयसे कर्म संयोग सहित आत्माकी क्या क्या परिणति या पर्यायें होती हैं उनको ठीक ठीक समझ ले। किस गुणस्थानमें कैसे भाव होते हैं व कैसे कर्मोंका बन्ध, व संवर व निर्जरा होती है, क्योंकि जब तक यह विदित

न होगा कि मेरा आत्मा कर्ममल सहित है, इसे शुद्ध करना है, तब तक मोक्षका साधन नहीं हो सकेगा। क्योंकि मोक्षका साक्षात् साधन निश्चय रत्नत्रयमई शुद्धात्माका अनुभव है। इसलिये शुद्ध निश्चय नयसे भी आत्माको जाने कि इसका मूल स्वभाव परम शुद्ध परमात्मा रूप है। यह सर्व पर द्रव्य, पर भाव, रागादि भावसे जुदा है। ऐसा निर्मल भेद-विज्ञान उत्पन्न करे। इसके द्वारा अपने आत्माको शुद्ध-अभेद-ज्ञायक मात्र ध्यावे। यही साधन है जिससे आत्मा कर्ममलसे मुक्त हो सिद्ध हो जाता है।

षट्काई जीवानां,
कृपा सहकार ममल भावेन।
सत्तु जीव सभावं,
कृपा सह ममल कलिष्ट जीवानं॥ २१॥

अन्वयार्थः—(षट्काई जीवानां) संसारी जीव छः कायमें विभाजित है-पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रस कायिक (कृपा सहकार ममल भावेन) इन सर्व प्राणी मात्र पर जब दयाभाव होता है, किसीको कष्ट देनेका भाव नहीं होता है, तब शुद्ध अहिंसक भाव प्रगट होता है (सत्तु जीव सभावं) यह अहिंसक भाव भी जीवका स्वभाव है। जहां सर्व प्राणियां

पर मैत्रीभाव होता है वहां उनकी तरफसे द्वेषभाव निकल जाता है। फिर जब सब जीवोंको अपने समान शुद्ध देखता है तब समभाव प्रगट होता है, वीतराग भाव जगता है, यह भाव अहिंसा भी जीवका स्वभाव है (कृपा सह ममल कलिष्ट जीवानं) जो सर्व प्राणी मात्र पर दया भाव रखता है उसका भाव जीवोंको क्लेश देनेके मलसे शुद्ध रहता है।

भावार्थ–मुमुक्षुको पूर्ण अहिंसक होनेकी शिक्षा दी है। ज्ञानी साधु जैसे निश्चय नयसे सर्व प्राणियोंको अपने आत्माके समान शुद्ध देखता है वैसे व्यवहार नयसे भी उनको अपने समान आत्मरक्षाके भावोंसे पूरित देखता है। इसलिये व्यवहारसे मन–वचन–कायका वर्णन करते हुए वह साधक छहों कायोंकी रक्षा करता है। किसीको बुद्धिपूर्वक कष्ट नहीं देता है। उनके कष्टको अपना कष्ट समझता है। पूर्ण अहिंसा महाव्रत पालता है। निश्चयनयसे सर्वको आप समान शुद्ध देखकर परम वीतराग व समभाव धारक हो जाता है। यह अहिंसा भाव भी आत्माका स्वभाव है। इस स्वभावमें रमण करना मोक्षका मार्ग है।

एकांत विप्रिय न दिट्ठं,
मध्यस्थं ममल सुद्ध सभावं।
सुद्ध सहावं उत्तं,
ममल दिट्ठी च कम्म षिपनं च॥ २२॥

अन्वयार्थः–(एकांत विभ्रिय न दिट्ठं) सम्यक्त्वीके भावमें एकांत व विपरीत मिथ्यात्व नहीं होता है, वह अनेकांतनयसे आत्माको अनेक प्रकार समझता है कि यह पर्यायदृष्टिसे अशुद्ध है, द्रव्यदृष्टिसे शुद्ध है, द्रव्यकी अपेक्षा नित्य है, पर्यायकी अपेक्षा अनित्य है इत्यादि। तथा वह विपरीत श्रद्धान नहीं रखता है। शुद्धात्मानुभवको ही मोक्षमार्ग जानता है। शुभोपयोगको मोक्षमार्ग नहीं जानता है, बन्ध मार्ग मानता है (मध्यस्थं ममल सुद्ध सब्भावं) ज्ञानी मध्यस्थ या वीतराग रहता है, किसी नयका एकांत नहीं पकड़ता है या जगतका स्वरूप विचित्र विचार कर राग–द्वेष नहीं करता है। निर्मल शुद्ध स्वभावको रखता है (सुद्ध सहावं उत्तं) शुद्ध स्वभावका अनुभव ही मोक्षमार्ग कहा गया है (ममल दिट्ठी च कम्म षिपनं च) इसी शुद्ध दृष्टिसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थः–सम्यग्दृष्टि वस्तुस्वरूपको जैसा है वैसा जानता है। वस्तु अनेक स्वभाव रूप है। इसको वैसा ही जानता है। भिन्न भिन्न अपेक्षासे वस्तुमें नाना स्वभाव समझता है व वह विपरीत मार्गको मोक्षमार्ग नहीं जानता है। वह जानता है कि वीतराग विज्ञान ही मोक्षमार्ग है जो शुद्धात्मानुभव रूप है। इसीसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। वह जगतमें मध्यस्थभाव रखता है, जगतके प्राणियोंको

पाप-पुण्य-कर्मका संयोग है, उसके फलसे अनेक प्रकारके सुख व दुःख होते हैं। अपने व दूसरोंके सुख-दुःखको देखकर वह समभाव रखता है। इस तरह वीतरागी रहता हुआ वह पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा करता है व नवीन बन्ध गुणस्थानके अनुसार बहुत थोड़ा करता है। जब पूर्ण वीतरागी हो जाता है तब बन्ध रहित हो जाता है। इस तरह ज्ञानी मोक्षका साधन करता है। ज्ञानी जानता है कि व्यवहारनयसे अहिंसा दयाका भाव है। निश्चयनयसे सदा ही अहिंसा है।

सत्वं क्लिष्ट जीवा,
अन्मोय सहकार दुग्गए गमनं।
जे विरोह सभावं,
संसारे सरनि दुषवीयम्मि ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः-(सत्वं क्लिष्ट जीवा) जो जीव जगतके प्राणियोंको क्लेश देते हैं, पीड़ित करते कराते हैं (अन्मोय सहकार दुग्गए गमनं) व उनको क्लेश पहुँचनेमें अनुमोदना करते हैं, आनन्द मानते हैं वे अवश्य दुर्गतिको जाते हैं (जे विरोह सभावं) जिनका स्वभाव प्राणियोंसे विरोध या द्वेषभाव पूर्ण रहता है वे रागी, द्वेषी होते हुए (संसारे सरनि दुषवीयम्मि) संसारमें भ्रमण करते हैं, वे दुःखोंके बीज

बोते रहते हैं। अपने अनिष्ट भावोंसे पापका बन्ध करते रहते हैं।

भावार्थः–मोक्षका कारण जब समभाव है तब संसार–का कारण राग-द्वेष–मोह है। मोही जीव शरीर व इन्द्रियोंके विषयोंके आसक्त होते हैं। इष्ट स्त्री, पुत्र, मित्र, सेवकोंमें व धनादि परिग्रहमें तीव्र राग करते हैं व अनिष्ट चेतन-अचेतन पदार्थोंमें द्वेष करते हैं। वे हिंसानन्दी, मृषानन्दी, चौर्यानन्दी परिग्रहानन्दी, रौद्रध्यानमें व इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिंतवन निदान बन्ध आर्तध्यानमें फँसे रहते हैं। वे नरक व पशुगति बांधकर वहां उपज कर कष्ट पाते हैं व दीन हीन रोगी मानव होकर कष्टसे जीवन बिताते हैं। उनको कभी सुख–शांति प्राप्त नहीं होती है। इसलिये ज्ञानीको उचित है कि हिंसामई भावको छोड़ दे, समभावका अभ्यास करे। यही मोक्षका साधक है।

न्यान सहाव सु समयं,
अन्मोयं ममल न्यान सहकारं।
न्यानं न्यान सरूवं,
ममलं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः–(न्यान सहाव सु समयं) ज्ञानस्वभावमें रहना स्वसमय है। समय नाम आत्माका है। आत्माका अपने आत्माके

स्वभावमें जमना स्वसमय है (अन्मोयं ममल न्यान सहकारं) यही स्वरूप रमण भाव या स्व-संवेदन ज्ञान आनन्द स्वरूप है व यही शुद्ध केवलज्ञानका कारण है । (न्यानं न्यान सरूवं) केवलज्ञान ज्ञानका यथार्थ स्वरूप है (ममलं अन्मोय सिद्धि सम्पत्तं) तब आत्मा कर्ममलसे रहित परमानन्दमय हो जाता है तब सिद्ध स्वरूपको पा लेता है ।

भावार्थः—अपने ही आत्माको परम शुद्ध श्रद्धान करके व उसीका यथार्थ ज्ञान करके जो कोई अपने ही वीतराग रत्नत्रयस्वभावी स्वरूपमें रमण करता है वह स्व-समय हो जाता है । वहां शुद्धात्माका अनुभव होता है । यही केवल-ज्ञानका साधक भाव है, इसीसे घातिया कर्मोंका नाश होकर भव्य जीव अरहन्त हो जाता है, फिर चार अघातिया कर्मोंको भी क्षय करके सिद्ध हो जाता है । मोक्षके अर्थीको अपने ही आत्माको शुद्ध ज्ञानानन्दमय ध्याना चाहिये और आनन्द लाभ करते हुए मोक्ष पर पहुँच जाना चाहिये ।

इष्टं च परम इष्टं,
इष्टं अन्मोय विगत अनिष्टं ।
पर पर्जायं विलयं,
न्यान सहावेन कम्म जिनियं च ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(इष्टं च परम इष्टं) परम प्रिय आत्मिक

पद इष्ट है (इष्टं अन्मोय विगत अनिष्टं) तथा आत्मिक आनन्द इष्ट है जिससे किसी प्रकारका अनिष्ट या बुरा नहीं होता है। सांसारिक सुख जब आकुलताका कारण व बन्धका कारण है तब आत्मिक सुख निराकुल व बन्धका निरोधक व निर्जराका कारण है (पर पर्जोयं विलयं) जब आत्मिक आनन्दका अनुभव होता है तब राग-द्वेषादि पर परिणति विला जाती है (न्यान सहावेन कम्म जिनियं च) तब साधक ज्ञानस्वभावमें रमण करनेसे कर्मोंको जीत लेता है।

भावार्थः—साधकको अपने आत्माके शुद्ध स्वभाव पर व उसके परमानन्द गुण पर दृढ़ रुचि रखनी चाहिये व श्रद्धा व ज्ञानपूर्वक वीतराग विज्ञानमई स्वभावमें रमण करना चाहिये। तब बन्धकी कारण सर्व प्रकारकी कषाय परिणति रुक जायगी व कर्मों पर विजय प्राप्त हो जायगी। कर्मोंको जीतनेका उपाय शुद्ध ज्ञानस्वभावमें रमण है।

जिन वयन सुद्ध सुद्धं,
अन्मोयं ममल सुद्ध सहकारं।
ममलं ममल सरूवं,
जं रयनं रयन सरूप संमिलियं ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः—(जिन वयन सुद्ध सुद्धं) जिनवाणी परम

शुद्ध है, क्योंकि परम शुद्ध आत्मा द्रव्यको बतानेवाली है (अन्मोयं ममल सुद्ध सहकारं) तथा यह आनन्दमय कर्म-मल व रागादि मल रहित शुद्ध अनुभव करानेमें सहायक है (ममलं ममल सरूवं) आत्मा का स्वभाव परम शुद्ध है (जं रयनं रयन सरूव संमिलियं) जिसमें रमण करनेसे रत्नत्रय स्वरूपका लाभ हो जाता है।

भावार्थः—साधकको जिनवाणी भले प्रकार पढ़नी चाहिये। उसके मनन करनेसे शुद्धात्माका लाभ होगा। मोक्षमार्ग निश्चय रत्नत्रय स्वरूप है। शुद्धात्मामें यही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। यही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। यही बारम्बार अनुभव थिररूप होना सम्यक्चारित्र है। जो कोई सर्व संकल्प विकल्प छोड़कर अपने ही शुद्धात्माके स्वभावमें रमण करता है वही यथार्थ मोक्षमार्गी है।

> स्रेष्टं च गुन उववन्नं,
> स्रेष्टं सहकार कम्म संषिपनं।
> स्रेष्टं च इष्ट कमलं,
> कमलं सिरि कमल भाव ममलं च ॥२७॥

अन्वयार्थः—[स्रेष्टं च गुन उववन्नं] जिनवाणीके निश्चय व व्यवहाररूप कथनको समझनेसे व निश्चयनयकी प्रधानतासे शुद्धात्माका मनन करनेसे शुद्धोपयोगरूप उत्कृष्ट गुण झलक

जाता है (स्रेष्टं सहकार कम्म संषिपनं) इस उत्कृष्ट भावके कारणसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। अर्थात् घातीया कर्मोंका क्षय हो जाता है (स्रेष्टं च इष्ट कमलं) तब उत्कृष्ट व परम प्रिय कमल समान आत्मा अरहन्त स्वरूपमें विकसित हो जाता है (कमल सिरि कमल भाव ममलं च) तब परम ऐश्वर्य सहित कमलरूप अरहन्तके भीतर शुद्ध आत्मिक कमलका यथार्थ भाव झलका करता है।

भावार्थः–आत्माका स्वरूप कमलके समान है, परम प्रफुल्लित आनन्दमई है, कर्मोंके आवरणसे कमल मुरझाया हुआ रहता है, जब शुद्धोपयोगरूप शुक्लध्यानके द्वारा कर्मोंका नाश किया जाता है तब आत्माके घातक कर्म नाश हो जाते हैं और आत्मारूपी कमल अपने स्वभावमें प्रफुल्लित हो जाता है। तब वहां शुद्ध स्वभाव वीतराग ज्ञानानन्दमय सदा चमकता है। कमल शोभनीक प्रकाशमान रहता है।

जिन वयनं सहकारं,
मिथ्या कुन्यान सल्य तिक्तं च।
विगतं विषय कषायं,
न्यानं अन्मोय कम्म गलियं च ॥२८॥

अन्वयार्थः–(जिन वयनं सहकारं) जिनवाणी बहुत सहाय करनेवाली है (मिथ्या कुन्यान सल्य तिक्तं च) इसीके

मननसे मिथ्यात्वभाव, अज्ञानभाव व माया, मिथ्या, निदान, शल्यभाव सब चले जाते हैं (विगतं विषय कषायं) पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी इच्छा मिट जाती है, क्रोधादिक कषायोंका शमन होता है (न्यानं अन्मोय कम्म गलियं च) तथा ज्ञानानन्दमय आत्मस्वभावमें लीनता होती है तब कर्ममल दूर हो जाता है।

भावार्थः– जिनवाणीके मनन करनेकी प्रेरणा की गई है। जैसे प्रकाश होने पर अन्धकार नहीं रहता है, वैसे तत्त्वज्ञानका प्रकाश होने पर मिथ्या तत्त्वका श्रद्धान, मिथ्याज्ञान, तीन शल्य, विषयोंकी प्रीति व कषायोंका बल सब मिट जाता है तथा आत्माके स्वरूपको बारम्बार मनन करनेसे शुद्धात्माका अनुभव प्रगट हो जाता है। यही ध्यानकी अग्नि है जो कर्मोंको जलाती है।

कमलं कमल सहावं,
षट् कमलं तिअर्थ ममल आनन्दं।
दर्सन न्यान सरूवं
चरनं अन्मोय कम्म संषिपनं ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः– (कमलं कमल सहावं) आत्मारूपी कमल अपने स्वभावमें अरहन्त परमात्मा में प्रकाशित हो जाता है (षट् कमलं तिअर्थ ममल आनंदं) तब वहां कमलमें सर्वांग

व्यापक छः महान गुण कमलके समान झलक जाते हैं। अनन्त-दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्तसुख, क्षायिक सम्यग्-दर्शन और क्षायिक चारित्र, तथा वहीं तीनों रत्नत्रय भी झलकते हैं व शुद्ध स्वाभाविक आनन्दका प्रकाश होता है (दसंन न्यान सरूवं) तब आत्मा दर्शन ज्ञानमई स्वरूपमें आचरण करता है (चरनं अन्मोय कम्म संषिपनं) उसे चारित्रमें जो आनन्द आता है उसके प्रतापसे कर्मोंका सर्वथा क्षय होकर सिद्धपद हो जाता है।

भावार्थः—अरहन्त परमात्मा विकसित कमल समान हैं, उनमें शुद्ध स्वभाव चमक गया है, वे नित्य आत्मिक दर्शन—ज्ञानमें तन्मय हैं, वे ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान—चारित्रमई रत्नत्रय स्वरूप हैं, वे अनन्त सुखमें लीन हैं। अघातीया कर्म स्वयं गिर जाते हैं तब वह सर्व शरीरोंसे रहित सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं।

संसार सरनि नहु दिट्ठं,
नहु दिट्ठं समल पर्जाय सभावं।
न्यानं कमल सहावं,
न्यान विन्यान ममल अन्मोयं॥ ३०॥

अन्वयार्थः—(संसार सरनि नहु दिट्ठं) उन सिद्ध भगवानमें संसारका भ्रमण नहीं देखा जाता है, कर्म रहित

होनेसे वे फिर संसारमें भ्रमण नहीं करते हैं [नहु दिट्ठं समल पजोय सभावं) न वहाँ कोई अशुद्ध परिणति रागादिकी व इच्छाकी है, न चार गति सम्बन्धी कोई विभावपर्याय दिखती है (न्यानं कमल सहावं) केवलज्ञान कमलके समान पूर्णपने प्रकाशक रहता है (न्यान विन्यान ममल अन्मोयं) वहाँ शुद्ध ज्ञान है, शुद्ध ही आनन्द है।

भावार्थः—सिद्ध भगवान पूर्ण प्रफुल्लित कमलके समान आत्मा हैं। उनकी आत्मामें न कोई ज्ञानावरणादि द्रव्य-कर्म है, न रागादि भावकर्म है, न शरीरादि नोकर्म है, वे शुद्ध ज्ञानमई, शुद्ध आनन्दमई, अनंत वीर्यमई, परम वीतराग स्वरूप परमात्मा हैं। शुद्धोपयोगका पूर्ण फल प्राप्त कर चुके हैं। अब भी निरन्तर आत्मिक अमृतका पान करते हैं।

जिन उत्तं सद्दहनं,
अप्पा परमप्प सुद्ध ममलं च।
परमप्पा उवलद्धं,
धम्म सुभावेन कम्म विलयन्ती ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(जिन उत्तं सद्दहनं) जिनेन्द्र कथित तत्त्वों पर श्रद्धान लाना चाहिये (अप्पा परमप्प सुद्ध ममलं च) जिनवाणी बतलाती है कि मूलमें यह आत्मा ही

परमात्मा है, शुद्ध है, वीतराग है (धम्म सुभावेन कम्म विलयन्ती परमप्पा उवलद्धं) जो कोई आत्माके इस धर्मरूपी स्वभावमें रमण करता है अपनेको शुद्धात्मारूप ध्याता है, उसके सर्व कर्म क्षय हो जाते हैं और वह परमात्मपद प्राप्त कर लेता है।

भावार्थः—सिद्ध परमात्मा होनेका उपाय अपने ही आत्माको सिद्धके समान शुद्ध निर्विकार ज्ञाता-दृष्टा मानके अपने ही शुद्धात्माका ध्यान है, यह ज्ञान कि मैं शुद्धात्मा हूँ, श्री जिनवाणीके द्वारा प्रकाशित सात तत्त्वोंको व्यवहार व निश्चयनयसे जाननेसे होगा। आत्माके स्वभावको ही धर्म कहते हैं। जो कोई आत्मधर्मको श्रद्धापूर्वक ग्रहण करेगा व आत्मध्यान करेगा वह इस जीवनको सफल करेगा। नित्य शांति व आनन्दको भोगेगा व कर्मोंका क्षय करके सिद्ध हो जायगा।

जिन दिष्ट उत्त सुद्धं,
जिनयति कम्मान तिविह जोएन।
न्यानं अन्मोय ममलं,
ममल सरूवं च मुक्ति गमनं च ॥३२॥

अन्वयार्थः—(जिन दिष्ट उत्त सुद्धं) जैसा जिनेन्द्रने देखा है व कहा है वैसा ही शुद्ध आत्माका स्वरूप यहां

कहा गया है। जो कोई श्रद्धान करेगा व शंका रहित जानेगा (तिविह जोएन कम्मान जिनयति) और तीनों मन, वचन, काय योगोंको वश करके आत्माका ध्यान करेगा वह कर्मोंको जीत लेगा, (न्यानं अन्मोय ममलं) उसका ज्ञान व आनन्द शुद्ध हो जायगा, (ममल सरूवं च मुक्ति गमनं च) वह पूर्ण शुद्ध होकर मुक्ति प्राप्त कर लेगा।

भावार्थः—श्री तारणस्वामीने कहा है कि मैंने इस कमलबत्तीसीमें वही कथन किया है जैसा श्री जिनेन्द्रने कथन किया है। जैसा उन्होंने शुद्धात्माको देखा व दिखाया है वैसा मैंने दिखाया है। जो कोई अपने द्रव्यस्वभावको शुद्ध अनुभव करेगा, मन—वचन—कायको उपयोगसे हटाकर स्वसंवेदन द्वारा आपसे आपका ध्यान करेगा वह परमानंदको भोगता हुआ कर्मोंका क्षय करता चला जायगा, वह पूर्ण केवलज्ञानी हो जायेगा, वह पूर्ण आनन्दमई हो जाएगा, वह अरहन्त होकर फिर सिद्ध हो मोक्षपदमें कमल समान प्रफुल्लित रहकर सदा आनन्दका भोग करेगा।

इति श्री कमलबत्तीसी ग्रन्थ जिन तारणतरण विरचित समाप्त।

●

मंगल पांचों परम पद, मंगल श्री जिन बैन।
जा प्रसाद टीका हुई, खुले ज्ञानके नैन ॥

—ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद

अथ आशीर्वाद पहला

ॐ उवन उववन्न, उव सु रमनं, दिप्तं च दृष्टी-मयं ।
ह्रियथारं तं अर्क विन्द रमणं शब्दं च प्रायोजितं ॥
सहयारं सहि नंत रमण ममलं, उववन्न साहं धुवं ।
सुयंदेवं उववन्न जय, जयं, च जयनं, उववन्नं मुक्ते जयं ॥१॥

—:—

अथ आशीर्वाद दूसरा

जुगयं खण्ड-सुधार, रयण अनुवं, निमिषं सु समयं जयं ।
घटयं तुञ्ज मुहूर्त एक पहरं, पहरं च द्वी-पहरं ॥
त्रीय पहरं, चतु पहरं, दिन रयणी, वर्ष स्वभावं जिनं ।
वर्ष खिपति सु आयु काल कलनो, जिन दिप्ते मुक्ते जयं ॥२॥

—:—

अथ तीसरा आशीर्वाद

वे दो छण्ड विरक्त चित्त दिढ़ियो, कायोत्सर्गामिनो ।
केवलिनो नृत लोय पेख पिखणं, दलयं च पञ्चेन्द्रिनो ।
धर्मो मार्ग प्रकाशिनो जिन तारण तरो, मुक्ते वरं स्वामिनो ।
सुयंदेवंश्री जुग आदि तारण तरो, उववन्नं 'श्री संघं' जयं ॥३॥
सर्व मंगल—मांगल्यं, सर्व—कल्याणकारकम् ।
प्रधानं सर्व—धर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥ ४ ॥

—:—

❀ श्री जिन तारण-तरण चैत्यालय मन्दिर विधि ❀

(साधारण विधि बैठकर करना)

तत्त्वपाठ

जय नमोऽस्तु

(देवको नमस्कार)

तत्त्वंच नन्द आनन्द मउ, चेयानन्द सहाव ।
परम तत्त्व पद विंद पउ, नमियो सिद्ध सहाव ॥

गुरुको नमस्कार

गुरु उवएसिउ गुप्तरुइ, गुप्त न्यान सहकार ।
तारण तरण समर्थ मुनि, भव संसार निवार ॥

धर्मको नमस्कार

धर्म जो ओतो जिनवरहिं, अर्थति अर्थ संजोय ।
भय विनास भव्य जु मुणहु, ममल न्यान परलोय ॥
ओंकारसे सब भये, डाल पात्र फल फूल ।
प्रथम ताहिको वंदिये, याही सबनको मूल ॥
ॐकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायंति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः ॥
ओंकार सब अक्षर सार, पंच परमेष्ठी तीर्थ अपार ।
ओंकार ध्यावे त्रिलोक, ब्रह्मा विष्णु महेश सुरलोक ॥

ओंकार ध्वनि अगम अपार, बावन अक्षर गर्भित सार ।
चारों वेद शक्ति है जाकी, ताकी महिमा जगत प्रकाशी ॥
ओंकार घट-घट प्रवेश, ध्यावत ब्रह्मा विष्णु महेश ।
नमस्कार ताको नित कीजे, निर्मल होय परम रस पीजे ॥

देवं देवं नमस्कृतं, लोकालोक प्रकाशकं ।
त्रिलोकं अर्थ ज्योति, ओंकार च वंदते ॥
अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानांजन शलाक्या ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै, श्री गुरुभ्ये नमः ॥
परमगुरुभ्ये नमः, परंपराचार्य गुरुभ्ये नमः ॥
(इति तत्व समाप्त)

विनती फूलना ।

[यह फूलना मिलकर पढ़ना चाहिये ।

(क्षुल्लक जयसेन द्वारा संशोधित)

देव जी मेरे मन आनंद भयो गुरु, विनती एक सुनीजे ।
भणत बिरम तारण जिन उवने, विनती एक सुनीजे ॥
हांजू तारण जिन विनती एक सुनीजे ।
तुम अन्मोय भव्य जिय उवने तिन उवएसु कहीजे ॥ टेक ॥
नंद अनंदह चिदानंद जिन, कम्म उवन्न विलीजे ॥ टेक ॥
चहुंगति भ्रमत दुःख भयो भारी, सुख नहिं कबहूं पायो ।
ऐसे काल तरण जिन उवने, मुक्ति पंथ दरसायो ॥ टेक ॥

काल-पंचमों चपल अनिष्ट य, इष्ट दृष्टि न उपज्जे।
न्यान बलेन इष्ट संजोये, भय खिपि कम्म गलिज्जे ॥ टेक ॥
संसय सरण नन्त भय भारी, भयह् दृष्टि भमिज्जे।
भय विनासु तं भव्य उवन्नो, कम्म उवन्न विलिज्जे ॥ टेक ॥
दव्व कम्मु आवर्ण उपज्जय, सल्य संक भय ओतं।
न्यानावरण न्याय तं विलियो, भय खिपि सिद्दि संपातं ॥
वज्रनराच संहनन सहियो, भय विनास सुपर्येसं।
तं सरीर औदारिक सहियो, खिपिय तरण सुपर्येसं ॥
चक्खु अचक्खुह् जं भौ उपजे, गुहजह् भौ जु अनन्तु।
तारण तरण सहावह् जिनियो, न्याय दृष्टि विलयंतु ॥
तारण तरण सहावह् विलियो, सल्य संक विलयंतु।
न्यान विन्यानह् ममलसरूवे, भय खिपि मुक्ति पहुंतु ॥ टेक ॥

—:—

[पश्चात् नीचे लिखी क्रिया करना चाहिये-पढ़ना चाहिये]

आदिमें श्री आदिनाथ देवजी भये अंतमें श्री महावीर देवजी भये। बाईस तीर्थंकर मध्यानुगामी भये चौबीसीको नाम लीजे तो पुण्यकी प्राप्ति होय।

श्री चौबीसी ।

श्री ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन
सुमति पद्म-प्रभु छठे जिनेश्वर ।
सतम तीर्थंकर भये हैं सुपारस,
चंद—प्रभ आठम है निवारस ॥
पुष्पदंत शीतल श्रेयांस,
वासुपूज्य और विमल अनंत ।
धर्मनाथ वंदत अविनीश्वर,
सोलह कारण शांति जिनेश्वर ॥
कुन्थु अरह मल्लि मुनिसुव्रत वीसा,
नमियो अष्टांग सिद्धि इकवीसा ।
नेमिनाथ साहसि गिरि नेमि,
सहन शील बाईस परीष ॥
पारसनाथ तीर्थंकर तेईस,
वर्द्धमान जिनवर चौबीस ।
चार जिनेन्द चहुं दिश गये,
बीस सम्मेद शिखर पर गये ॥
आदिनाथ कैलाशे गये,
वासु—पूज्य चंपापुर गये ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार,
पावापुरी वीर जिनराज ॥

दो धवला दो श्यामला वीर,
दो जिनवर आरक्त शरीर।
हरे वरण दो ही कुल—वंत,
हेमवरण सोला इक—वंत ॥
चौबीस तीर्थंकर मोक्षें गये,
दश कोड़ा कोड़ी काल विल भये।
भये सिद्ध अरु होंय अनंत,
जे वंदों चौबीस जिनंद ॥
वंदों तीर्थंकर चौबीस,
वंदों सिद्ध वसें जगदीस।
वंदों आचारज उवझाय,
वंदों साधु गुरुन के पांय ॥

(दोहा)

देव धरम गुरुको नमो, नमो सिद्ध शिव क्षेत्र।
विदेह क्षेत्रमें जिन नमो, जिनके नाम विशेष ॥

●

विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरोंके नाम

सीमन्धर स्वामी जिन नमों मन वच काय हियेमें धरों।
युगमन्धर स्वामी जुगपाय, नाम लेत पातक छय जाय ॥

बाहु सुबाहु स्वामी धरधीर, श्री सुजाति स्वामी महावीर।
स्वयंप्रभू स्वामीजीको ध्यान, ऋषभाननजी कहूँ बखान ॥

अनंतवीर सूरप्रभ सोय, विशालकीर्ति जग कीरत होय।
वज्रधर स्वामी चन्द्रधर नेम, चंद्रबाहु कहिये जिन वेम ॥
भुजंगम ईश्वर जग ईश, नेमीश्वरकी विनय करीश।
वीर्यसेन वीरज बलवान, महाभद्रजी कहिये जान ॥
देवयश स्वामी श्री परमेश, अजित वीर्य सम्पूर्ण नरेश।
विद्यमान बीसी पढ़ो चितलाय, बाढ़े धर्म पाप छय जाय ॥

ऐसे चौबीस तीर्थंकर जिन्होंने आठ कर्म, आठ मद, अठारह दोषोंको नष्ट कर निर्वाण पद प्राप्त किया ऐसे जिनेन्द्र देव तिनको बारंबार नमस्कार हो। ऐसे बीस तीर्थंकर विदेह क्षेत्रमें सदा सर्वदा विराजमान तिनको नमस्कार कीजे तो पुण्यकी प्राप्ति होय।

●

विनय बैठक।

अब कहा दर्शावत हैं कि शास्त्र सूत्र सिद्धान्त नाम अर्थजी शास्त्रनाम काहे सों कहिये जिसमें सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे धर्मकी महिमा चले। कैसे हैं सच्चे देव-गुरु-धर्म और शास्त्र-

—दोहा—

सांचो देव सोई, जामें दोषको न लेश कोई।
सांचो गुरु वही, जाके उर कछु की न चाह है ॥
सही धर्म वही, जहां करुणा प्रधान कही।
ग्रन्थ सही वही, जहां आदि अंत एक सो निरवाह है ॥

यही जग रतन चार, ज्ञानहीमें परख यार।
सांचे लीजे झूठे डार, नरभवको लाहो है॥
मनुष्य विवेक बिना, पशुके समान गिना।
यातें यह बात ठीक, पारणी सलाह है॥

शास्त्रकी व्याख्याः—शास्त्र नाम काहे सों कहिये जिसमें शाश्वतो धर्म, सच्चे गुरु और सच्चे देवका स्वरूप या जीवको सिद्ध होनेकी महिमा चले। या दर्शनस्थिति, ज्ञानस्थिति, चारित्रस्थिति, धर्मकी उत्पत्ति कर्मोंकी खिपत्ति या जीवकी मुक्ति कलन, चरण, रमण, ॐकार श्रियंकार, ह्रियँकार उवनदिढ़ मुक्ति दिढ़, ऐसो त्रिक स्वभाव चले ताको नाम शास्त्रजी कहिये! बहुरि जामें मारण है, तारण है, बध बंधन है, विदारण है ऐसो कथन चले ताको नाम कुशास्त्र कहिये! बहुरि जाके सुननेसे या जीवको साहस बंधे सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय, बोध-बीजकी उत्पत्ति होय ताको नाम शास्त्रजी कहिये।

अब सूत्र नाम काहे सों कहिये, जाके श्रवणसे या जीवको मन, वचन, कायको एक सूत्र होय ताको नाम सूत्र कहिये। नातर हे भाई, मन कहूंको चले, वचन कहुंको चले, काया जाकी स्थिर नाहीं, ताको सूत्र नाहीं कहिये। धन्य हैं गुरु तारण-तरण जिनके नव सूत्र सुधरे व दशवें आत्मीक सूत्रमें चौदह ग्रन्थोंकी रचना करी।

—दोहा—

सूत्रं जं जिन उक्तं तं श्रुतं शुद्ध भाव संकलियं।
असूत्रं नव पीछंति सूत्रं शशि हाव सुद्ध मप्पाणं॥

अब सिद्धान्त नाम अर्थ जी जामें सिद्धोंके आदि अंत नय लय कथन चले चौबीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण, नव बलभद्र ऐसे त्रेसठ शलाकाके पुरुषोंका कथन चले या उनके गुणोंकी महिमा चले ताको नाम सिद्धान्त कहिये । अब यथा नामा तथा गुणा गुण शोभित नाम, नाम शोभित गुण धन्य भगवान तुम्हारे नाम भी वंदनीक और गुण भी वंदनीक ।

—: दोहा :—

नाम लेत पातक कटें विघन विनासे जांय ।
तीन लोक जिन नामकी, महिमा वरणी न जाय ॥ १ ॥
गुण अनंत मय परमपद, श्री जिनवर भगवान ।
ज्ञेय लक्ष है ज्ञानमें, अचल महा शिवथान ॥ २ ॥
अगम हती गुरु गम्य ना, गुरुगम दई लखाय ।
लक्ष कोसकी गैल है, पलमें पहुंचे जाय ॥ ३ ॥
विघन विनाशन भय हरन, भय भंजन गुरुतार ।
तिनके नाम जो लेत हैं संकट कटत अपार ॥ ४ ॥
कठिन काल विकरालमें, मिथ्या मत रहो छाय ।
सम्यक्भाव उदोतकर, शिवमग दियो बताय ॥ ५ ॥
परम्परा यह धर्म है, केवल भाषित सोय ।
ताकी नय वाणी कथित, मिथ्या मतको खोय ॥ ६ ॥
धन्य धन्य जिन धर्मको, सब धर्मोंमें सार ।
ताको पंचम कालमें, दरसायो गुरु तार ॥ ७ ॥

धन्य धन्य गुरु तारजी, तारण तुमरो नाम ।
जो नर तुमको जपत हैं, सिद्ध होत सब काम ॥ ८ ॥
जो कदापि गुरु तारको, नहिं होतो अवतार ।
मिथ्या भव सागर विषैं, कैसे लहते पार ॥ ९ ॥

अब शास्त्रजीको नाम कहा दर्शावत हैं— श्री भयखिपनिक ममल-पाहुड नाम ग्रन्थजी श्री कहिये शोभनीक मंगलीक जय जयवन्ता: कल्याणकारी महासुखकारी, श्री महावीर स्वामीके मुखारविंद कण्ठ कमलकी वाणी, इस पंचमकालमें श्री गुरु तारण तरण महाराजने दरसाई जिनको दो ज्ञान जगे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानको अंकुर उत्पन्न भयो ता विषें पंच मतें जगीं जिनमें चौदह ग्रन्थोंकी रचना करी जय बोलिये जय नमोस्तु ॥

— ० —

आशीर्वाद स्तवन ।

उत्पन्न रंज प्रवेश गमनं छद्मस्थ सुभाव सुक्खेन सुक्खेन ये दुक्ख बिलयन्ति, जय बोलिये जय नमोस्तु ।

—: दोहा :—

अप्प समुच्चय जानिये ऋषि यति मुनि अनगार ।
पद पस्सय कर्महिं खिपय सिद्ध होंय तिहिवार ॥

सिद्ध जाय देवोंके दाता, गुरुके उपदेश, धर्मके निश्चें, धारणाके परचें, ऐसे जे व्यासी हजार वर्षें जांय आगे मुक्तके सुख बिलसें चतुर्थ कालमें पद्म पुंग राजाके पद्मनाभि तीर्थङ्कर –

देव अन्मोयं स्वयं स्वयं मुक्ति गामिनो सुक्खेन कालखिपियं श्री जिनेन्द्रके वचन सत्य हैं, ध्रुव हैं, प्रमाण हैं। जय बोलिये जय नमोस्तु।

— ० —

अथ अबलबली लिख्यते।

(क्षुल्लक जयसेन द्वारा संशोधित)

जय अबल बली उवन कमल, वयन जिन ध्रुव तेरे ।
अन्मोय शुद्ध रंज रमण, चेत रे मण मेरे ॥
जय तार तारण समय तारण, न्यान ध्यान विवंदे ।
आयरण चरण शुद्धं, सर्वन्य देव गुरु पाये ॥
जय नंदा आनंद, चेयानंद सहज परमानंदे ।
परमाण ध्यान स्वयं, विमल तीर्थङ्कर नाम वंदे ॥
जय कलन कमल, उवन रमण रंज रमण राये ।
जय देव दीपति स्वयं, दीपति मुकति रमण राये ॥

— ० —

गुरु तोहि ध्यावत सुख अनन्ता

(स्वामी तारण जिनदेवा)

उत्पन्न रंज रमण नंद जय मुक्ति दायक देवा।
काऊण णमुक्कारं जिनवर बसहस्स बड्ढमाणस्स
दंसणमग्गं वोच्छामि, जहाकम्मं समासेण
सव्वण्हु सव्वदंसी, णिम्मोहा वीयराय परमेष्ठी

वन्दितु तिजगवन्दा अरहंता भव्य जीवेहिं
सपरा जङ्गमदेहा, दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं

णिग्गंथ वीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा
मणुयभवे पंचिदिय, जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे

एदे गुणगणजुत्तो गुणमारूढ़ो हवई अरुहो
णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झड़ियकम्मेण

चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देव्वस्स
जिणबिम्बं णाणमयं संजमसुद्धं सु वीयरायं च ।

जं देइ दिक्खसिक्खा कम्मक्खय कारणं सुद्धा

गुणवय तवसम पड़िमा दाणं जलगालणं अणत्थमियं
दंसण णाण चरित्तं किरिया तेवण्ण सावया भणिया

संसग्ग कम्मखिवणं सारं तीलोय न्यान विन्यानं
रुचियं ममलसहावं संसारे तरण मुक्तिगमणं च ।

(इति अबलबली)

—:—

आरती श्री गुरुदेवकी

आरती श्री गुरुदेव तुम्हारी, देव तुम्हारी श्री गुरुदेव तुम्हारी ॥टेक॥
तारण तरण बिरदके धारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।

जन्म नगर पुष्पावति प्यारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ।
सेमरखेड़ीमें दीक्षा धारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी ॥

निसई साधु समाधि तुम्हारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी।
वेत्रवती सरिताके पारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी॥

धन्य धन्य तुम अतिशय धारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी।
चौदह ग्रन्थ रचे सुखकारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी॥

भवि जन गणके तुम हितकारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी।
तुम गुरुदेव भवोदधि तारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी॥

जय जय परम धर्म दातारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी।
विनय करें श्रावक पद धारी, आरति श्री गुरुदेव तुम्हारी॥

आरती हो जाने पर चन्दन परसाद हो चुकने पर तत्त्व पढ़ा जाय व जाते समय सब भाईयोंको खड़े होकर सामूहिक रूपसे एक साथ कोई स्तुति या विनती पढ़ना चाहिये।

अथ तत्व प्रारंभ

तत्वंच नंद आनंद मउ, चेयानंद सहाव ।
परम तत्व पदविंद पउ, नमियो सिद्ध सहाव ॥

गुरु उवएसिउ गुप्त रुइ, गुपत न्यान सहकार ।
तारण तरण समर्थ मुनी, भव संसार निवार ॥

धर्म जो ओतो जिनवरहिं, अर्थ तिअर्थ संजोय ।
भय विनास भव्य जु मुणहु, ममलन्यान परलोय ॥

— ❀ —

(पश्चात शास्त्र जी को वेदीपर स्थापन करना चाहिये)

समाप्त

झंझा भक्तिके भजन

(१)

तारण तरण जिहाज, हमारे गुरु तारण तरण जिहाज।
डूबत हों भवसागर मांहि, पार लगा दीजो आज ॥ १ ॥
क्रोध मान माया लोभ विवर्जित करत आपनो काज ॥ २ ॥
कामी क्रोधी पतित उबारे, सारे सबके काज ॥ ३ ॥
माखन की अरजी चित धरियो बांह गहे की लाज ॥ ४ ॥

— ० —

(२)

छोड़ दे अभिमान, जिया तू छोड़ दे अभिमान ॥ टेक ॥
कहाँ को तू है कौन है तेरो जे सब ही महमान।
तोहे देखत सब ही चल जैहैं, राजा रंक दीवान ॥
छोड़ दे जा लोभ माया मोह मदिरा को पान।
कहें जिनदास आस जा पद की दूर करो अज्ञान ॥

— ० —

(३)

मैं तो आयो आयो आयो हो, चल आयो हो अपने देव गुरु वंदवे। टेक।
आकाशलोकसे इन्द्र जो आये, ऐरावत सजलाये हो ॥
पाताललोकसे फणीन्द्र जो आये, फनपर नृत्य कराये हो ॥

दशों दिशासे दिकपाल जो आये, आनन्द उमंग बढ़ाये हो ॥
मध्यलोकसे चक्रवर्ती आये, मनवांछत फल पाये हो ॥
राजगृहीसे राजा श्रेणिक आये, जय जय शब्द कराये हो ॥

— ० —

(४)

चित चाल्यो रे जिया, मन लागो रे भैया ।
गढ गिरनारी, चित चाल्यो रे जिया ॥

गढ गिरनारी के ऊँचे पहाड़ जहाँ विराजें श्री नेमजीकुमार ॥
मढ़वा माढ़न चले यदुराय, सब पशुअन मिल करी है पुकार ।
मौर जो पटको मढ़वा मांहि, कंकन तोड़ चले गिरनार ॥
राजुल सखियां लई हैं बुलाय चलो सखी नेमजी लैये मनाय ।
मैं बारे की निपट अजान कबहूँ न लीनो चन्द्प्रभु जी को नाम ॥
ठाडी राजुल दोई कर जोड़ि, कर्म लिखी मेटे न कोय ।
कहत विनोदीलाल सुनो यदुराय राज छोड़ वैराग्य को जाय ॥

— ० —

(५)

लद जैहै बनजारो एक दिन लद जैहै बंजारो ॥ टेक ॥
को है जाको लाद लदैया, को है हांकन हारो ।
मन है जाको लाद लदैया, तन है हांकन हारो ॥ १ ॥

क्रूर कपट कर माया जोड़ी कर कर के हित गाढो ।
तू जानत जा संग चलेगी पैसा नहीं है तिहारो ॥ २ ॥

देखत को परिवार घनेरो साथी न संगी तिहारो ।
जा काया को करत भरोसो वो ही करत किनारो ॥ ३ ॥

कहै जिनदास आस जा पदकी छोड़ो जगको सहारो ।
लद जैहै वनजारो एक दिन लद जैहै वनजारो ॥ ४ ॥

— ० —

(६)

पढ़ के चौदह ग्रन्थ गुरु के, रंग में हो जा मतवाला ।
फिर हो जा अलमस्त गुरु के रंग में हो जा मतवाला ॥

मस्त हुये थे गढासाहजी देश निकाला कर डाला ।
मस्त हुये गुरु तारन बाबा, जहरका प्याला पी डाला ॥

मस्त हुये उस्ताद लोकमन, मक्का मदीना तज डाला ।
मस्त हुये ब्रह्मचारी शीतल सब ग्रन्थोंको मथ डाला ॥

जीव अनन्ते मोक्ष गये हैं, यही धर्म सबसे आला ।
पढ़के चौदह ग्रन्थ गुरु के रंग में हो जा मतवाला ॥

परिशिष्ट

मालारोहण

गाथा ११ में देव सिद्धि गुण ८, गुरु अर्हन्त गुण १६, शास्त्र (धर्म) गुण १०

३४ अतिशय हैं अतिशय अतिशयवानसे जुदी नहीं होती हैं ।

गाथा १२ में ११ प्रतिमा, २७ तत्व, ५ व्रत, ७ शील, १२ तप, ४ दान ऐसे ६६ गुणोंसे ज्ञानचारित्रकी शुद्धिमें सम्यक्त है ।

गाथा १३ मूलंगुणं — संवेग निर्वेद निंदा गर्हा उपशम भक्ति वात्सल्य अनुकंपा ८ मूलगुण मिलकर ३४+६६+८=१०८ गुणमालाके कहे गये हैं ।

नोट— ८ मूलगुण ही प्रातिहार्यका काम करते हैं। इन ८ गुणोंके पालक इन्द्र-धर्णेन्द्र-गंधर्व-यक्ष नर-नाथ-चक्री-विद्याधर हैं जिन्हें गाथा २४ से ३१ तक मार्गदर्शन दिया है— तेमाल दृष्टं हृदय कंठ रुलितं ।

कमलबत्तीसी

गाथा १ मूल सम्यक्त्व,
” १० वेदक (क्षयोपशम),
” २१ मैत्रीभावना
” २३ करुणाभावना
” २५ क्षायिक सम्यक्त्व

गाथा २ आज्ञा सम्यक्त्व
” १६ उपशम
” २२ प्रमोदभावना
” २५ मध्यस्थभावना
” ३१ शुद्धसम्यक्तका कथन है

गाथा १२ में न्यातं पंचाम्मि अक्षरं जोयं मतिज्ञात स्थानके अक्षर ६
इ ई क ख ग घ ङ ज र । श्रुतज्ञात स्थान हृदय
अक्षर ११ स च छ ज झ ञ प व भ स श ।
अवधिज्ञान स्थान वाणी (मुख) अक्षर १० न ऌ ॡ
ए ट ठ ड ढ ण फ । मनःपर्यय स्थान ओष्ठ अक्षर
१० ध र ऋ ए त थ द ध न म । केवलज्ञान स्थान
ऊर्ध्व अक्षर १२ अ आ उ ऊ ओ अं व ह स ॐ
न मः । (ठिकाने सारसे)

२ बावन अक्षर शुद्धं ज्ञान विज्ञान उवएसे ।
सुद्धं जिनेइ भनियं ज्ञानविज्ञान भवू उवएसे ॥
(३३ उपदेशशुद्धसार)

३ ॐकार ध्वनि अगम अपारा,
बावन अक्षर गर्भित सारा ।
चारहु वेद शक्ति है जाकी,
ताकी रचना जगत प्रकाशी । (मंगलस्त्रोत)

४ ॐकारसे सब भयो, डाल पात्र फल फूल ।
प्रथम ताहिको वंदिये, यही सबनको मूल ।

५ ज्ञानके विज्ञानको समझना सम्यक्त है,
ज्ञानकी विपरीत समझ विपरीतपरिणति
अज्ञान है जिसे मिथ्यात्व कहा है ।

६ जिनवाणीके स्वाध्याय बिना मोक्षका आनन्द पाना कठिन है
सम्यक्त्व स्वरूप शुद्धात्मा मोक्षका पात्र है ।

७ निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रमें व्यवहारको
स्थान नहीं है । व्यवहार करते करते निश्चय नहीं होता ।
(—मो. मा. प्र.)

८ तू स्थाप निजको मोक्ष पथमें, ध्या अनुभव तू उसे,
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहारकर परद्रव्यमें ।
(— ४१२ समयसार)

९ यह समय प्राभृत पठन करके जान तत्त्व रु अर्थसे,
ठहरे तत्त्वमें जीव जो वो सौख्य उत्तम परिणवै ।
(— ४१५ समयसार)

१० पचखान नित्य करै अरु प्रतिक्रमण जो नित्यहि करै,
नित्य करै आलोचना वो "आतमा" चारित्र है ॥
(— ३८६ समयसार)

:: स्तुति ::

जयति जय महावीर भगवान ।टेक।
प्रभु तेरी अमृत वाणी ने किया जगत कल्याण ।
लक्ष लक्ष कण्ठों से निकली, जिन मन्दिर में तान ।
नाम तुम्हारा कैसा प्यारा, कोटि कोटि जीवों को तारा ।
बहती प्रेम सुधा रस धारा, स्वर्ग मोक्ष की खान ।
जो तेरी शरणागत आया, भक्ति भाव का सुमन चढ़ाया ।
पकड़ बांह उसको अपनाया, हे प्रभु ! पूज्य महान ।
तेरी महिमा कैसी न्यारी, जग में व्यापी सत्ता सारी ।
शेष शारदा जिव्हा हारी, महिमा दया निधान ।
भक्तों के प्यारे प्रभु आजा, एक-बार निज झलक दिखाजा ।
स्वतंत्र वीरज ज्योति जगाजा, देकर शुभ वरदान ।
महावीर भगवान जयति जय महावीर भगवान ।

॥ शुभम् मंगल भवतु ॥